हिन्द-स्वराज्य

महात्मा गांधी

अनुवादक

श्री कालिकाप्रसाद

१९५१

सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

चौथी बार : १९५१
मूल्य
बारह आना

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
नई दिल्ली

विषय-सूची

प्रस्तावना

स्वराज्यके बारेमें मैंने जो ये बीस प्रकरण लिखे हैं उन्हें आज पाठकोंके सामने उपस्थित करनेका साहस कर रहा हूँ।

जब मुझसे न रहा गया तभी मैंने लिखा। बहुत पढ़ा, बहुत सोचा। फिर जब विलायतमें ट्रांसवाल-डेपुटेशन के लिए चार महीने रहा उस अरसेमें मुझसे जहाँतक हो सका हिन्दुस्तानियोंके साथ इन बातोंपर विचार किया। जितने अंग्रेज़ोंसे भी मिल सका, मिला। जो विचार मुझे पक्के, अन्तिम जान पड़े उन्हें पाठकोंके सामने रखना अपना फ़र्ज़ समझा।

जो विचार मैंने प्रकट किये हैं वे मेरे हैं और मेरे नहीं हैं। मेरे हैं, क्योंकि उनके अनुसार आचरण करनेकी मुझे आशा है; वे मेरे अन्तरमें बससे गये हैं। मेरे नहीं हैं क्योंकि वे मेरे ही दिमाग में उपजे हों, सो बात नहीं है। वे कितना ही पुस्तकें पढ़नेके बाद बने हैं। मन जिन बातोंको अपने अन्तरमें अनुभव कर रहा था उन्हें पुस्तकोंका सहारा मिल गया।

जो विचार मैं पाठकों के सामने रख रहा हूँ वही सभ्यताके चक्कर में न पड़े हुए बहुसंख्यक हिन्दुस्तानियोंके भी हैं, इसे सिद्ध करनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती, पर यूरोपके हज़ारों आदमी भी वैसे ही विचार रखते हैं, यह मैं पाठकोंके मनमें प्रमाणोंसे ही बैठाना चाहता हूँ। जिसे छान-बीन करनी हो, जिसे फ़ुर्सत हो वह उन पुस्तकोंको पढ़कर देख सकता है। फ़ुर्सत मिलनेपर मैं उनमें से

कुछ पुस्तकें पाठकोंके सामने रख सकनेकी आशा रखता हूँ।

मेरे लेख पढ़कर 'इंडियन ओपीनियन' के पाठकों या दूसरे लोगोंके मनमें जो विचार उठें उन्हें जतानेकी कृपा वे करेंगे तो मैं उनका एहसानमन्द हूँगा।

इन लेखोंको लिखनेका उद्देश्य केवल देशसेवा, सत्य की खोज और उसके अनुसार आचरण करना है। इसलिए मेरे विचार गलत ठहरें तो उनसे चिपके रहनेका आग्रह मुझे नहीं है। हाँ, वे सही साबित हों तो देश के हितार्थ साधारण रीतिसे मनमें यह इच्छा रहेगी कि दूसरे भी उनका अनुसरण करें।

सरलताकी दृष्टिसे ये लेख पाठक और संपादकके संवादरूपमें लिखे गये हैं।

किलडोनन कॅसल,
२२ नवम्बर १६०६

—मोहनदास करमचंद गांधी

भूमिका

लार्ड लोदियन जब सेगाँव आये तो उन्होंने मुझसे 'हिन्द-स्वराज्य' की एक प्रति मांगी। उन्होंने कहा कि गांधीजी आज जो-कुछ कर रहे हैं उस सबके बीज उस छोटी-सी पुस्तक में मौजूद हैं, अतः गांधीजी को ठीक तौरसे समझनेके लिए उसको बार-बार पढ़ना चाहिए। संयोगकी बात है कि लगभग उसी समय श्रीमती सोफिया वाडियाने भी उसके विषयमें लेख लिखकर हमारे सब मन्त्रियों, व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों, सभी बड़े-बड़े अंग्रेज़-हिन्दुस्तानी अफ़सरों—यही नहीं, लोकतन्त्र-शासनमें असहयोग के वर्तमान प्रयोगकी सफलता चाहनेवाले हरएक आदमीसे उस पुस्तकको बार-बार पढ़नेका आग्रह किया। वह लिखती हैं—"अहिंसक आदमी अपने ही घर में कैसे अधिनायक, सर्वाधिकारी हो सकता है? पियक्कड़ कैसे बन सकता है? वकील अपने मवक्किलको अदालत जाने और लड़नेकी सलाह कैसे दे सकता है? इन प्रश्नोंके उत्तर देनेमें अति महत्त्वके व्यावहारिक प्रश्न उपस्थित होते हैं। 'हिन्द-स्वराज्य'में इन प्रश्नोंपर सिद्धांतकी दृष्टिसे विचार किया गया है। इसलिए जन-साधारणमें उसके विचारोंका व्यापक रूपसे प्रचार होना चाहिए।"

उनकी यह अपील सामयिक है। यह पुस्तक भारतमें हिंसात्मक क्रान्ति करनेके पक्षपातियोंकी दलीलोंके जवाबमें लिखी गई थी। सन् १९०८ ई० में जब गांधीजी लन्दनसे लौट रहे थे तब जहाज़पर उन्होंने इसे लिखा था और उनके

द्वारा संपादित 'इण्डियन ओपीनियन' पत्रमें यह क्रमशः प्रकाशित हुई थी। इसके बाद यह लेखमाला पुस्तक-रूपमें प्रकाशित हुई और बम्बई-सरकारने उसे ज़ब्त कर लिया। मि० कैलनबैककी खातिर गांधीजीने (गुजरातीसे) इसका (अंग्रेज़ीमें) उलथा किया था। बम्बई-सरकारकी ज़ब्तीके जवाबमें उन्होंने वह उलथा प्रकाशित किया। १९१२ ई० में स्व० गोखले दक्षिण अफ्रीका गये थे। उन्होंने जब इस अनुवाद को देखा तो उन्हें इसके विचार इतने अनगढ़, अध-कचरे और जल्दबाजीके जान पड़े कि उन्होंने कहा—एक साल हिन्दुस्तानमें रहनेके बाद गांधीजी खुद ही इस किताबको फाड़कर फेंक देंगे। उस महा पुरुषके प्रति पूरा आदर रखते हुए भी मैं कह सकता हूं कि उनकी भविष्यवाणी सच नहीं हुई।

१९२१ में इस पुस्तकके बारेमें लिखते हुए गांधीजीने कहा था—"यह द्वेषके बदले प्रेमकी शिक्षा देती है। हिंसाका स्थान आत्मबलिको देती है; पशुबलके मुकाबलेमें आत्मबलको खड़ा करती है। मैं इसमें एक शब्दको छोड़कर और कुछ भी काटना-बदलना नहीं चाहता और वह भी एक महिला-मित्रके अनुरोधसे। "इस पोथीमें आधुनिक सभ्यताकी कड़ी निन्दा की गई है। यह १९०८ में लिखी गई थी, पर मेरा वह विश्वास आज और भी दृढ़ है।···परन्तु मैं पाठकोंको यह चेतावनी दे देना चाहता हूँ कि आज मेरा लक्ष्य वह स्वराज्य नहीं है जिसका स्वरूप इस पुस्तकमें बताया गया है। मैं जानता हूँ कि भारतवर्ष उसके लिए अभी पूरे तौरसे तैयार नहीं है। यह कहना ढिठाई मालूम हो सकती है, पर यह मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं खुद तो उसी स्वराज्यके लिए श्रम कर रहा हूँ जिसका नक्शा इसमें खींचा गया है, पर हमारे सामुदायिक प्रयास का लक्ष्य भारतवर्षकी जनताकी इच्छाके अनुसार पार्लमेण्टरी स्वराज्य पाना ही है।"

आज १९३८ में भी कहीं-कहीं भाषामें थोड़ा-बहुत सुधार कर देनेके सिवा और कोई फेरफार वह इसमें नहीं करेंगे। इसलिए यह पुस्तक बिना कुछ घटाये-बढ़ाये ज्यों की त्यों पाठकों के सामने रक्खी जा रही है।

पर हिन्दुस्तान ऐसे स्वराज्यके लिए तैयार हो या न हो, हिन्दुस्तानियोंके लिए सर्वोत्तम यही है कि जिस पुस्तकमें सत्य और अहिंसाके युग्म सिद्धान्तोंके ग्रहणका अन्तिम तर्कसंगत परिणाम क्या है, यह बताया गया है उसको पढ़ कर उन सिद्धान्तोंको अपनाने न अपनानेका निर्णय करें।

गांधीजीको जब यह बतलाया गया कि कुछ समयसे यह किताब बाज़ारमें नहीं मिलती और इसके मद्रास वाले संस्करणकी ही थोड़ी-सी प्रतियां बची हैं जिनके दाम आठ आने हैं तो उन्होंने कहा कि इसे फ़ौरन लागतके दामपर प्रकाशित करना चाहिए जिससे जो लोग इसे पढ़ना चाहें उनके लिए यह सुलभ हो जाय। इसीलिए यह पुस्तक प्रायः लागतके मल्यपर ही प्रकाशितकी जा रही है।

वर्धा
२-२-३८

—महादेव देसाई

हिन्द-स्वराज्य

: १ :

कांग्रेस और उसके पदाधिकारी

पाठक—इस समय हिन्दुस्तानमें स्वराज्य-आन्दोलन की हवा बह रही है। सभी हिन्दुस्तानी आज़ादीके लिए तड़पते दिखाई देते हैं। दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंमें भी कुछ वैसी ही भाव-धारा बह रही है। हिन्दुस्तानियोंमें अपने हक हासिल करनेका जबर्दस्त जोश दिखाई देता है। आप इस बारेमें अपने विचार बतलानेकी कृपा करेंगे?

संपादक—आपका सवाल तो ठीक है, लेकिन उसका जवाब देना आसान नहीं है। अखबारका एक काम तो है और लोगोंके भावोंको समझना और उन्हें प्रकट करना; दूसरा है लोगोंमें जिन भावनाओंकी जरूरत हो उन्हें जागरित करना; तीसरा काम है लोगोंमें जो खोट-दोष हों उन्हें निर्भय होकर प्रकट कर देना, चाहे इसमें कितनी ही मुसीबतें क्यों न आयें। आपके सवालका जवाब देनेमें ये तीनों बातें एक-साथ आ जाती हैं। लोक-भावनाको किसी हदतक प्रकट करना होगा, लोगोंमें जिन इष्ट भावनाओंकी कमी है उन्हें पैदा करनेका यत्न करना होगा, और उनमें जो खोट-खामियां हैं उन्हें दिखलाना होगा। फिर भी जब आपने सवाल किया है तो उसका जवाब देना मुझे अपना फ़र्ज़ जान पड़ता है।

पा०—क्या सचमुच आप ऐसा समझते हैं कि हिन्दुस्तानियोंमें स्वराज्यकी भावना जग गई है ?

सं—यह तो जब नेशनल कांग्रेस (राष्ट्रीय महासभा) की स्थापना हुई तभीसे देखनेमें आ रहा है। 'नेशनल' शब्दका अर्थ ही इस भावका सूचक है।

पा०—आपकी यह बात तो ठीक नहीं जान पड़ती। हिन्दुस्तानके नौजवान तो कांग्रेसको कुछ गिनते ही नहीं; वे तो उसे अंग्रेजी राज्यको बनाये रखनेका साधन समझते हैं।

सं०—नौजवानों का यह खयाल ठीक नहीं है। भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीने जमीन तैयार न की होती तो हमारे नौजवान जो आज स्वराज्यकी बात करते हैं वह भी न कर पाते। मि० ह्यूमने कांग्रेसका उद्देश्य सिद्ध करने के लिए जो लेख लिखे, जिस तरह चाबुक लगा-लगा कर हमें कुछ करनेको मजबूर किया, और जिस जोशके साथ हमें सोतेसे जगाया वह कैसे भुलाया जा सकता है ? सर विलियम वेडरबर्नने भी इसीमें अपना तन-मन-धन लगा दिया। उन्होंने अंग्रेजी राज्यके बारेमें जो लेख लिखे हैं वे आज भी पढ़ने लायक हैं। प्रोफेसर गोखलेने राष्ट्रको तैयार करनेके लिए बीस बरसतक भिखारीका जीवन बिताया। आज भी वह गरीबीकी ही जिन्दगी बसर कर रहे हैं। स्वर्गीय जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी भी उन लोगोंमें से हैं जिन्होंने कांग्रेस के जरीये स्वराज्यका बीज बोया। इसी प्रकार बंगाल, मदरास, पंजाब आदिमें भी कांग्रेस और हिन्दुस्तानके हितैषी—हिन्दुस्तानी और अंग्रेज दोनों—हो चुके हैं, यह हमें याद रखना चाहिए।

पा०—ठहरिये, ठहरिये, आप तो बहुत आगे बढ़ गये। मेरा सवाल कुछ है और आप जवाब कुछ दे रहे हैं। मैं स्वराज्यके बारे में पूछता हूँ, आप पर-राज्यकी बात कर रहे हैं। मुझे अंग्रेजोंका नाम नहीं सुहाता, और आपने उनके

नामोंकी झड़ी लगा दी। इस तरह तो हमारा मेल बैठता नहीं दिखाई देता। मुझे तो स्वराज्यकी ही चर्चा भाती है, दूसरी बुद्धिमत्ता-भरी बातोंसे मुझे संतोष नहीं मिलनेका।

सं०—आप तो घबरा गये, पर मेरा काम घबरानेसे न चलेगा। आप जरा सब्रसे काम लें तो आप देखेंगे कि आप जो चीज चाहते हैं वही आपके सामने आ जायगी। याद रखिये, हथेलीपर सरसों नहीं जमती। आपने मुझे रोका और आपको भारतका भला करनेवालोंकी चर्चा नहीं सुहाती, यह बताता है कि कमसे कम आपके लिए तो स्वराज्य अभी बहुत दूर है। आप-जैसे बहुतसे हिन्दुस्तानी हों तब तो हम आगे जाकर भी पीछे पड़ जायँगे। यह बात जरा सोचने-लायक है।

पा०—मुझे तो ऐसा लगता है कि इस तरहकी गोल-मटोल बातें करके आप मेरे सवालको उड़ा देना चाहते हैं। जिन्हें आप हिन्दुस्तानका हित करनेवाला समझते हैं उन्हें मैं वैसा नहीं मानता। तब मैं उनके किस उपकारकी बात आपसे सुनूँ? जिन्हें आप भारतके पितामह कहते हैं उन्होंने उसकी कौन-सी भलाई की? वे तो कहते हैं कि अंग्रेज़ शासक न्याय करेंगे और हमें उनके साथ मिलकर काम करना चाहिए।

सं०—मैं बड़ी विनय के साथ आपसे कहूँगा कि इन महापुरुषोंके बारेमें आपका बेअदबीसे बोलना हमारे लिए लज्जाकी बात है। जरा उनके कामोंकी ओर तो देखिये। उन्होंने अपना जीवन भारतको अर्पण कर दिया। उन्हींके पढ़ाये हुए पाठ तो हमने पढ़े हैं। अंग्रेज़ोंने हिन्दुस्तान का खून चूस लिया है, यह बात आदरणीय दादाभाईने ही तो हमें बतलाई है! अगर आज भी अंग्रेज़ोंपर उनका विश्वास बना है तो इससे क्या बिगड़ गया? जवानीके जोशमें अगर

हम एक कदम आगे बढ़ जाते हों तो क्या इससे दादाभाई हमारे लिए कम पूज्य हो गये ? क्या इसी कारण हम उनसे बड़े ज्ञानी हो गये ? जिस डण्डेपर पाँव रखकर हम ऊपर चढ़े उसको लात न मारना ही बुद्धिमानी है। याद रखिये, अगर हमने उसे तोड़ या निकाल दिया तो सारी सीढ़ी ही बैठ जायगी। बचपनसे बढ़कर अब हम जवानीमें आते हैं तो बाल-कालका तिरस्कार नहीं करते बल्कि बड़े प्रेमसे उन दिनोंको याद करते हैं। अनेक वर्षोंके अध्ययनके बाद कोई मुझे पढ़ाये और उस पूँजीको मैं थोड़ा बढ़ा लूं तो इससे मैं अपने गुरुसे बड़ा ज्ञानी नहीं मान लिया जाऊंगा। अपने गुरुका तो सम्मान मुझे करना ही होगा। यह बात भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीके बारेमें भी समझनी चाहिए। यह तो हमें मानना ही होगा कि हमारी राष्ट्रीयताके जनक वही हैं।

पा०—यह तो आपने ठीक कहा। यह बात तो समझमें आ रही है कि दादाभाईका हमें सम्मान करना चाहिए, क्योंकि वह और उन-जैसे पुरुषोंने जो काम किया वह न हुआ होता तो आज हममें जो जाग और जोश है वह शायद न होता। लेकिन प्रोफेसर गोखलेकी गिनती उनमें कैसे हो सकती है ! वह तो अंग्रेज़ों के बड़े हिमायती हो रहे हैं। कहते हैं कि अंग्रेज़ोंसे हमें बहुत-कुछ सीखना है, पहले हमें उनकी राजनीतिको सीख-समझ लेना चाहिए, फिर स्वराज्य की बात करनी चाहिए। उनके भाषणों से तो मेरा जी ऊब गया है।

सं०—यह जी ऊबना तो इस बातकी दलील है कि आपमें धीरज नहीं है। पर जो नौजवान अपने माँ-बाप के ठंढे स्वभाव से ऊबते और उनके अपने साथ न दौड़ सकनेपर क्रोध करते हैं वे अपने माँ-बापका अनादर करने वाले माने जाते हैं। प्रोफेसर गोखलेके बारेमें भी यही बात है। अगर वह हमारे साथ नहीं दौड़ सकते तो इससे क्या होता है ? जो राष्ट्र स्वराज्यका उपभोग करना

चाहता है वह अपने बड़ोंका तिरस्कार नहीं कर सकता। बड़ोंकी इज्जत करनेकी आदत छूट जायगी तो हम निकम्मे हो जायंगे। स्वराज्यका उपभोग तो परिपक्व बुद्धिवाले ही कर सकते हैं, उच्छृङ्खल, उतावले नहीं। फिर देखिये, जिस समय प्रोफेसर गोखलेने देशमें शिक्षाके प्रसारके लिए अपना जीवन अर्पण किया उस समय उन-जैसे हिन्दुस्तानी कितने थे ? मेरा तो विश्वास है कि प्रोफेसर गोखले जो कुछ करते हैं वह सब शुद्ध भावसे, हिन्दुस्तानका हित सोचकर ही करते हैं। उनके हृदयमें भारतकी इतनी भक्ति है कि ज़रूरत हो तो उसके लिए वह अपनी जान भी हाजिर कर सकते हैं। वह जो कहते हैं उसे ठीक मानकर कहते हैं, किसीकी खुशामद करनेके लिए नहीं कहते। अतः हमारे मनमें उनके प्रति पूज्य भाव होना चाहिए।

पा०—तो क्या जैसा वह कहते हैं वैसा ही हमें भी करना चाहिए ?

सं०—मैं यह तो नहीं कहता। अगर सचाईके साथ हमारा उनसे मतभेद हो तो वह खुद ही हमें यही सलाह देंगे कि हमें अपने मत-विश्वास के अनुसार चलना चाहिए। हमारा मुख्य कर्तव्य तो यह है कि हम उनके काम की निन्दा न करें। वह हमसे बड़े हैं यह मानें और यह विश्वास रखें कि उनकी तुलनामें हम लोगोंने हिन्दुस्तानके लिए कुछ नहीं किया है। कुछ पत्र उनके बारेमें ओछी बातें लिखते हैं। हमारा फ़र्ज़ है कि हम उनकी निन्दा करें और प्रोफेसर गोखले-जैसे लोगोंको स्वराज्यका स्तम्भ समझें। यह मान लेना अच्छी बात नहीं है कि दूसरोंके विचार गलत हैं और हमारे ही सही हैं, तथा जो हमारे विचारोंके अनुसार नहीं चलता वह देशका दुश्मन है।

पा०—अब आपकी बातें कुछ-कुछ समझमें आने लगी हैं, फिर भी मुझे इस विषयमें सोचना होगा। लेकिन मि० ह्यूम, सर विलियम वेडरबर्न आदिके

बारेमें आपने जो कुछ कहा वह तो मेरी समझके बाहरकी बात है।

सं०—जो बात हिन्दुस्तानियोंके लिए है वही अंग्रेज़ोंके बारेमें भी समझनी चाहिए। मैं यह नहीं मान सकता कि सभी अंग्रेज़ बुरे हैं। बहुतसे अंग्रेज़ ऐसे हैं जो चाहते हैं कि हिन्दुस्तानको स्वराज्य मिल जाय। यह तो सही है कि अंग्रेज़ जातिमें स्वार्थकी मात्रा आवश्यकतासे कुछ अधिक है; पर इससे यह साबित नहीं होता कि हरएक अंग्रेज़ खराब है। जो अपने साथ न्याय चाहते हैं उन्हें दूसरोंके साथ भी न्याय करना होगा। सर विलियम वेडरबर्न हिन्दुस्तानकी बुराई नहीं चाहते, इतना ही हमारे लिए काफी है। हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे आप देखेंगे कि हम न्यायवृत्तिसे काम लेंगे तो हिन्दुस्तानको गुलामीसे जल्दी छुटकारा मिलेगा। साथ ही आप यह भी देखेंगे कि अंग्रेज़-मात्रको अगर हम अपना दुश्मन समझेंगे तो स्वराज्य हमसे दूर चला जायगा। पर अगर हम उनके साथ न्याय करें तो स्वराज्य-प्राप्तिमें हमें उनकी भी मदद मिलेगी।

पा०—फिलहाल तो यह सब मुझे फालतू अकलमंदी दिखाना-सा जान पड़ता है। स्वराज्य-प्राप्तिमें अंग्रेज़ोंकी मदद मिले यह तो आप उलटी बात कहते हैं। हमारे स्वराज्यसे अंग्रेज़ोंका क्या सरोकार? मगर इस सवालका जवाब मुझे इसी वक्त नहीं चाहिए। उसमें वक्त लगाना बेकार है। जब आप बतलायेंगे कि स्वराज्य हमें कैसे मिलेगा, तब मैं शायद आपके विचार समझ सकूं। इस समय तो अंग्रेज़की मददकी बात कहकर आपने मुझे भ्रममें डाल दिया है और आपके विचारोंके विषयमें मेरे मनमें शंका उत्पन्न हो गयी है। इसलिए इस बातको तो आगे न बढ़ाना ही अच्छा है।

सं०—मैं अंग्रेजों की बात बढ़ाना नहीं चाहता। मेरे विषय में आपके मन में जो भ्रम हो गया है उसकी परवा मुझे नहीं है। मुझे यही ठीक मालूम होता है

कि जो कड़वी बात कहनी हो वह शुरूमें ही कह दूँ । मेरा फ़र्ज़ है कि धीरजके साथ आपका भ्रम दूर करने की कोशिश करूँ ।

पा०—आपकी यह बात मुझे पसन्द आती है । इससे मैं जिसे ठीक समझूँ उसे कहनेकी मुझे हिम्मत हो रही है फिर भी एक शंका तो रह ही गई । कांग्रेस-की स्थापनासे स्वराज्यकी नींव किस तरह पड़ी ?

सं०—देखिए, कांग्रेसने भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके भारतीयोंको इकट्ठा करके उनमें एक राष्ट्र होनेकी भावना पैदा की । कांग्रेसपर सरकारकी सदा कड़ी नजर रही है । कांग्रेसने हमेशा इस बातपर ज़ोर दिया है कि राष्ट्रके आय-व्यय का नियंत्रण-जनताके ही हाथमें होना चाहिए । कनाडा-सरीखे स्वराज्यकी माँग वह सदा करती रही है । वह मिलेगा या नहीं, हम उसे चाहते हैं या नहीं, उससे अच्छी भी कोई चीज़ है या नहीं, यह सब अलग सवाल है । मुझे तो यही बतलाना है कि कांग्रेसने हिन्दुस्तानको स्वराज्यका चसका लगा दिया । इसका श्रेय उसे न देकर किसी औरको देना अनुचित है और हम ऐसा करें तो यह हमारी कृतघ्नता होगी; यही नहीं इससे हमारे उद्देश्यकी सिद्धिमें भी बाधा पड़ेगी । कांग्रेसको अगर हम अपनेसे भिन्न और स्वराज्य-प्राप्तिके मार्गमें बाधारूप मानेंगे तो उसका उपयोग न कर सकेंगे ।

: २ :

बंग-भंग

पा०—आपके कहनेके मुताबिक यह बात तो ठीक ही मालूम पड़ती है कि स्वराज्यकी नींव कांग्रेसने डाली; लेकिन यह तो आपको कबूल करना होगा कि वह सच्ची जाग नहीं मानी जा सकती। सच्ची जाग कब और कैसे हुई?

सं०—बीज कभी दिखाई नहीं देता। वह तो मिट्टीके नीचे अपना काम करके खुद मिट जाता है, तब जाकर पेड़ ज़मीनके ऊपर देख पड़ता है। यही हाल कांग्रेसका है। जिसे आप सच्ची जागर्ति मानते हैं वह तो बंग-भंगसे पैदा हुई है। उसके लिए तो हमें लार्ड कर्ज़नका एहसान मानना चाहिए। बंग-भंगके समय बंगालियोंने लार्ड कर्ज़नकी बहुत आरज़ू-मिन्नत की; पर शक्तिके मदमें उन्होंने कुछ न सुनी। उन्होंने मान लिया कि हिन्दुस्तानी केवल बक-झक करके रह जायँगे, इनके किये और कुछ नहीं होनेका। उन्होंने हिन्दुस्तानियोंके लिए अपमान-भरे शब्द व्यवहार किये और बड़ी ऐंठके साथ बंगालके दो टुकड़े कर दिये। समझना चाहिए कि उसी दिनसे ब्रिटिश राज्यके भी टुकड़े हो गये। बंग-भंगसे ब्रिटिश शक्तिको जैसा धक्का लगा वैसा और किसी बातसे नहीं लगा। इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे जो अन्याय हुए वे कुछ बंग-भंगसे कम थे। नमक-कर कोई छोटा अन्याय नहीं है। आगे चलकर हमें ऐसी कितनी ही बातें मालूम होंगी। पर

बंग-भंगका विरोध करनेके लिए जनता तैयार थी। उस समय उसमें बड़ा जोश था। बंगालके अनेक नेता अपना सर्वस्व होमनेको उद्यत थे। उन्हें अपनी शक्तिका पता था। इसलिए एकबारगी विस्फोट हुआ। अब यह आग बुझनेवाली नहीं, बुझानेकी ज़रूरत भी नहीं है। बंग-भंग तो रद्द होगा ही, बंगाल फिर जुड़ जायगा[1]; पर ब्रिटिश नावमें जो दरार पड़ गई है वह भरनेकी नहीं, वह दिन-दिन और चौड़ी होती जायगी। जागा हुआ हिन्दुस्तान फिर सो जाय, यह हो नहीं सकता। बंग-भंगको रद्द करनेकी माँग एक तरहसे स्वराज्यकी ही माँग है। बंगालके नेता इस बातको अच्छी तरह समझते हैं; ब्रिटिश अधिकारी भी इसे समझते हैं। इसीसे तो बंग-भंग अभीतक रद्द नहीं हुआ। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं, भारत राष्ट्र बनता जाता है। राष्ट्रोंका निर्माण एक दिनमें नहीं हुआ करता; इसके लिए तो कितने ही बरस चाहिए।

पाठक—आपकी समझमें बंग-भंगका फल क्या हुआ?

सं०—अबतक हम यह समझते आ रहे थे कि हमें बादशाहके पास अपनी अरजी-फरियाद पहुँचानी चाहिए और वहाँ सुनवाई न हो तो ख़ामोशीके साथ सब कष्ट-अन्याय सहन करते रहें; हाँ, बीच-बीचमें अर्जी ज़रूर भेजते रहें। बंग-भंगके बाद लोगोंने देखा कि अरजी-प्रार्थनाके पीछे कुछ बल होना चाहिए, लोगोंमें कष्ट-सहनकी क्षमता होनी चाहिए। नई भावनाको ही बंग-भंगका मुख्य परिणाम समझना चाहिए। अख़बारोंमें यह भावना स्पष्ट रूपसे दिखलाई दी। उनके लेख कड़े, ज़ोरदार होने लगे। जो बातें डरते हुए और लुक-छिप कर कहीं जाती थीं

---

[1] यह बात १९०८ में लिखी गयी थी। तीन बरस बाद यह भविष्यद्वाणी सत्य हुई। ब्रिटिश सरकारको बंग-भंग रद्द कर देना पड़ा।—अनु०

वे अब खुले-खजाने कही-लिखी जाने लगीं। स्वदेशीका आन्दोलन शुरू हुआ। अंग्रेजको देखकर पहले छोटे-बड़े सभी डरकर भागते थे, यह डरना-काँपना बन्द हो गया। लोग अब लड़ाई-झगड़े, मार-पीटसे नहीं डरते, जेल जानेको भी तैयार रहते हैं। भारतके अनेक लाल आज भी देश-निकाला भोग रहे हैं। ये बातें खाली-खूली अर्जी-प्रार्थनासे कुछ भिन्न जातिकी हैं। इस तरह लोगोंमें हलचल हो रही है। बंगालकी हवा उत्तरमें पंजाब तक और दक्षिणमें कन्याकुमारी तक पहुँच गई है।

पा०—इनके सिवा और भी कोई जानने योग्य फल आपको दिखाई देता है?

सं०—बंग-भंगसे जिस तरह ब्रिटिश नौकामें दरार पड़ गई है उसी तरह हम लोगोंमें भी पड़ी है। बड़ी घटनाओंके परिणाम भी बड़े हुआ करते हैं। हमारे नेताओंमें दो दल हो गये हैं—'माडरेट' और 'एक्स्ट्रीमिस्ट'। अपनी भाषामें हम उन्हें 'नरम और 'गरम' कह सकते हैं। कुछ लोग 'माडरेट' को डरपोक और 'एक्स्ट्रीमिस्ट' को बहादुर दल भी कहते हैं। सब अपने-अपने विचार के अनुसार इन शब्दोंका अर्थ करते हैं। इतना तो पक्का है कि ये दोनों दल एक दूसरेके दुश्मन हो गये हैं। एक दल दूसरेका अविश्वास करता और उसपर चोटें किया करता है। सूरतकी कांग्रेसके मौकेपर तो एक तरहसे मारपीट तककी नौबत पहुँच गई। मेरी समझमें तो यह दो-दली देशके लिए अच्छी चीज नहीं है। पर साथ ही मैं यह भी मानता हूँ, कि यह दलबन्दी बहुत दिन रहेगी नहीं। कितने दिन रहेगी यह हमारे नेताओंपर अवलंबित है।

: ३ :

अशान्ति और असन्तोष

प०—तो आप बंग-भंगको जन-जागरणका कारण मानते हैं। पर उससे पैदा हुई अशान्तिको अच्छा मानना चाहिए या बुरा ?

सं०—आदमी नींदसे जागनेपर आलससे अँगड़ाइयाँ लेता है, इधर-उधर करता है और कुछ बेचैन-सा रहता है। नींदकी खुमारी जाने और पूरा होश आनेमें कुछ देर लगती है। इसी तरह बंग-भंगसे हम जाग तो गये, पर अभी हमारी खुमारी नहीं गयी। हम अब भी अँगड़ाइयाँ ले रहे हैं, अब भी अशान्तिकी दशामें हैं। पर जैसे नींद और जागरणके बीच की अवस्था आवश्यक और इस कारण ठीक समझी जानी चाहिए उसी तरह बंगाल और हिन्दुस्तान-भरमें फैली हुई वर्तमान अशान्तिको भी इष्ट ही मानना चाहिए। हम जान रहे हैं कि अशान्ति है इससे शान्तिका समय आना भी सम्भव है। नींद टूट जानेपर कोई जन्मभर अँगड़ाइयाँ ही नहीं लेता रहता; अपनी शक्ति के अनुसार, जल्दी या कुछ देरसे, पूरी तरह जाग जाता ही है। इसी प्रकार इस अशान्तिसे भी हमें छुटकारा जरूर मिलेगा। अशान्ति किसीको अच्छी नहीं लगती।

प०—अशान्तिका दूसरा रूप क्या है ?

सं०—अशान्ति वस्तुतः असन्तोष है। आजकल इसे हम 'अनरेस्ट'

(अशान्ति) कहते हैं, कांग्रेस के जमाने में इसे 'डिस्कंटेंट' (असंतोष) कहते थे। मि० ह्यूम हमेशा यही कहते थे कि हिन्दुस्तानमें असन्तोष फैलाने की जरूरत है। यह असन्तोष बड़े काम की चीज है। जबतक आदमी अपनी मौजूदा हालतसे सन्तुष्ट रहता है तबतक उसे उसमेंसे निकलनेके लिए समझाना कठिन होता है। इसीलिए हरएक सुधारसे पहले असन्तोष होना ही चाहिए। अपने पास-की चीजको फेंक देनेको जी तभी चाहता है जब उससे अरुचि हो जाय। हमारे अन्दर यह असन्तोष भारतीय तथा अंग्रेज़ महापुरुषोंकी लिखी हुई किताबें पढ़कर पैदा हुआ है। असन्तोषसे अशान्ति हुई जिसकी आगमें कितने ही मरे, कितने ही बे-घरबारके हुए, और कितनोंको जेल और देशनिकाला मिला। अभी तो यही दशा रहेगी, रहनी चाहिए भी। ये सब शुभ लक्षण माने जा सकते हैं; पर इनका फल बुरा भी हो सकता है।

: ४ :

स्वराज्य क्या है ?

पा०—कांग्रेसने हिन्दुस्तानको एक राष्ट्र बनानेके लिए क्या किया, बंग-भंगसे जन-जागरण कैसे हुआ और असन्तोष तथा अशान्ति कैसे फैली, यह मैंने जान लिया। अब स्वराज्यके बारेमें आपके विचार क्या हैं यह जानना चाहता हूँ। मुझे डर है कि इस विषयमें शायद हमारे विचार एक न होंगे।

सं०—ऐसा होना मुमकिन है। स्वराज्यके लिए तो हम-आप सभी अधीर हो रहे हैं, पर वह है क्या चीज़, इस बातपर अभी तक हमने ठीक तौर-से विचार नहीं किया है। अंग्रेज़ोंको निकाल बाहर करनेकी बात तो बहुतोंके मुँहसे सुनाई पड़ती है; पर ऐसा क्यों करना चाहिए, इसपर हमने ठीक तौरसे विचार किया हो यह नहीं दिखाई देता। आपसे ही पूछता हूँ, जो-कुछ हम चाहते हैं अंग्रेज़ वह सब हमें दे दें, तब भी क्या आप उन्हें निकाल बाहर करनेकी ज़रूरत समझेंगे ?

पा०—मैं तो उनसे एक ही बात कहूँगा—"मेहरबानी करके आप हमारे देशसे तशरीफ ले जायँ।" इस बातको वे मान लें और फिर भी कोई यह अर्थका अनर्थ कर बैठे कि वे हिन्दुस्तानसे जाकर भी नहीं गये तो मुझे कोई आपत्ति न होगी। मैं मान लूगा कि हमारी भाषामें 'गया' का अर्थ 'बना रहा' भी होता है।

सं०—अच्छा, थोड़ी देरके लिए मान लीजिए कि अंग्रेज़ हमारी बात मानकर चले गये। फिर आप क्या करेंगे ?

पा०—इस सवालका जवाब अभीसे नहीं दिया जा सकता। उनके जानेके बादकी स्थिति, वे किस तरह जाते हैं इसपर अवलम्बित होगी। आप जैसा कहते हैं उस तरह मान लें कि वे चले गये तो मैं समझता हूँ कि हम लोग उनके बनाये विधानको बना रहने देंगे और राज्यका काम-काज चलाते रहेंगे। अगर वे यों ही चले गये तो उनकी फौज़ वगैरह तो रहेगी ही, इसलिए राज-काज चलानेमें हमें कोई अड़चन न पड़ेगी।

सं०—आप भले ही ऐसा समझते हों, मैं तो नहीं समझता। पर अभी मैं इस बहसमें न पड़ूँगा। मुझे तो आपके सवाल का जवाब देना है, और यह मैं आपसे ही कुछ सवाल पूछकर अच्छी तरह कर सकूँगा। इसीलिए मैं आपसे ही कुछ प्रश्न करता हूँ। अच्छा बताइये, आप अंग्रेज़ों को क्यों निकालना चाहते हैं ?

पा०—इसलिए कि उनके शासन से हमारा देश कंगाल होता जा रहा है। वे साल-ब-साल हमारे देश का धन ढोये लिये जा रहे हैं। वे गोरे चमड़ेवालोंको ही बड़े ओहदे देते हैं, हमें गुलामकी दशामें ही रखते हैं। हमारे साथ उद्धतपनसे पेश आते हैं और हमारे भावोंकी तनिक भी परवाह नहीं करते।

सं०—अगर वे हमारा धन ढोना छोड़ दें, विनम्र बन जायँ, हमें बड़े ओहदे दें, तब भी क्या आप उनके यहाँ रहने में हर्ज मानेंगे।

पा०—यह सवाल ही बेकार है। यह तो वैसा ही सवाल है कि बाघ अपना स्वभाव बदल दे तो उससे भाईचारा जोड़नेमें क्या नुकसान है ? ऐसा प्रश्न करना तो महज वक्त बरबाद करना है। बाघ अपना स्वभाव बदल दे तो अंग्रेज़

भी अपनी आदत छोड़ सकते हैं और जो बात अनहोनी है उसके होने की आशा रखना मनुष्य की रीति नहीं है।

सं०—कनाडा और दक्खिण अफ्रीकाके बोअरों को जैसा स्वराज्य मिला है वैसा ही हमें भी मिल जाय तो?

पा०—यह भी वैसा ही फालतू सवाल है। हमारे पास भी उनकी तरह गोला-बारूद हो तभी ऐसा हो सकता है। पर जब उन लोगोंके बराबर अधिकार मिल जायगा तब तो हम अपना ही झंडा फहरायेंगे। जो स्थिति जापानकी है वही हिन्दुस्तानकी होगी। हमारी अपनी सेना, अपना जंगी बेड़ा, अपनी शान-शौकत होगी, तभी भारतके गौरवका डंका सारी दुनियामें बजेगा।

सं०—आपने चित्र तो बढ़िया खींचा। इसके मानी तो यह हुए कि आपको अंग्रेज़ोंका राज्य तो चाहिए, पर अंग्रेज़ नहीं चाहिए। आप बाघका स्वभाव तो चाहते हैं, पर बाघको नहीं चाहते। मतलब यह कि आप हिन्दुस्तानको अंग्रेज़, अंग्रेज़ी तौर-तरीके, शक्ल-सूरत वाला बनाना चाहते हैं। पर तब तो वह हिन्दुस्तान नहीं, इंग्लिस्तान कहलायेगा। मैं ऐसा स्वराज्य नहीं चाहता।

पा०—मैंने तो आपको महज यह बतलाया है कि स्वराज्यका अर्थ मेरी समझसे क्या है। हमने जो शिक्षा पायी है उसमें कुछ कामकी बात हो, मिल-स्पेंसर आदि महान् लेखकोंके जो ग्रन्थ हमने पढ़े हैं उनका कुछ मूल्य हो, अंग्रेज़ों-की पार्लमेंट सचमुच 'पार्लमेंटोंकी माँ' हो, तो बेशक, मैं समझता हूँ, उनकी नकल हमें करनी चाहिये, और वह इस हदतक कि जैसे वे दूसरोंको अपने देशमें घुसने नहीं देते वैसे ही हम भी न घुसने दें। पर अपने देशमें उन्होंने जो कुछ किया है वैसा तो अभी और किसी देशमें हुआ दिखाई नहीं देता। इसलिए हमें तो वह करना ही होगा। पर अब आप अपने विचार बताइये।

सं०—अभी सब्र कीजिये। इस चर्चामें मेरे विचार अपने आप प्रकट हो जायँगे। स्वराज्यका समझना आपको जितना सहल लगता है, मुझे उतना ही कठिन जान पड़ता है। इसलिए फ़िलहाल तो मैं आपको इतना ही समझानेकी कोशिश करूँगा कि आप जिसे स्वराज्य कहते हैं वह सचमुच स्वराज्य नहीं है।

: ५ :

इंगलैंडकी हालत

पा०—तब आपके कहनेका मैं यह अर्थ लगाता हूँ कि इंगलैंडमें जिस प्रकारका राज्य-प्रबंध है वह ठीक नहीं है और हमें वह नहीं चाहिये।

सं०—आपका अनुमान ठीक है। इंगलैंड की आज जो दशा है वह सच-मुच दयनीय है और मैं तो ईश्वरसे मनाता हूँ कि वैसी हालत हिन्दुस्तानकी कभी न हो। जिसे आप 'पार्लमेंटोंकी माँ' कहते हैं वह तो बाँझ और वेश्या है। ये दोनों शब्द कठोर हैं, पर उसपर पूरी तरह चरितार्थ होते हैं। उसे बाँझ मैं इस लिए कहता हूँ कि अबतक उसने एक भी अच्छा काम अपने आप नहीं किया। उसकी स्वाभाविक रूपसे ऐसी स्थिति है कि उसके ऊपर दबाव देनेवाला कोई न हो तो वह कुछ भी न करे। और वेश्या वह इसलिए है कि जो मंत्रिमण्डल वह बनाती है उसके वशमें रहती है। आज उसके धनी ऐस्क्विथ हैं तो कल बालफर और परसों कोई और।

पा०—यह तो कुछ व्यंग्यकी-सी बोली है। उसका बाँझ होना अभी आपने साबित नहीं किया। वह जनताके चुने हुए लोगोंसे बनी है इसलिए उसके दाबमें रहकर काम करती है। यही तो उसका गुण है, यही उसके ऊपर अंकुश है।

सं०—यह बात नितान्त भ्रमात्मक है। पार्लमेंट बाँझ न हो तो यों होना

चाहिए—लोग उसमें अच्छे से अच्छे मेम्बर चुनकर भेजते हैं। मेंबरोंको कोई दरमाहा नहीं मिलता, अतः उन्हें लोक-कल्याणके लिए ही वहाँ जाना चाहिए। लोग यानी चुननेवाले अपने आपको पढ़ा-लिखा समझते हैं, इसलिए हमें मान लेना चाहिए कि वे चुनावमें गलती न करते होंगे। ऐसी पार्लमेंटको अर्जी-प्रार्थना, जोर-दबावकी जरूरत न होनी चाहिये। उसका काम इतना सरल होना चाहिये कि दिन-दिन उसका तेज बढ़ता दिखाई दे और लोगोंपर उसका असर ज्यादा होता जाय। पर आज इतना तो सभी स्वीकार करते हैं कि पार्लमेंटके मेंबर ढोंगी और स्वार्थरत होते हैं। सभीको अपनी-अपनी पड़ी रहती है। पार्लमेंट कुछ करती है तो डरकर ही करती है। आज जो किया उसे कल रद्द कर देना पड़ता है। उसने किसी काम को ठिकाने पहुँचाया हो, इसकी एक भी मिसाल अबतक देखनेमें नहीं आयी। जिस वक्त बड़े-बड़े मसलोंपर बहस हो रही हो उस समय उसके मेंबर लम्बी तानते या बैठे-बैठे झपकियाँ लिया करते हैं। कभी-कभी वे इतना चीखते-चिल्लाते हैं कि सुननेवाले घबरा जाते हैं। उन्हींके एक महान् लेखक कारलाइलने पार्लमेंटको 'दुनियाका बकवासखाना' कहा है। जो जिस दलका सदस्य होता है वह आँख मूँदकर उसीको अपना वोट देता है, देनेको मजबूर है। कोई इस नियमका अपवाद बन जाय तो समझ लीजिये कि उसकी मेंबरीके दिन पूरे हो गये। जितना समय और पैसा पार्लमेंट बरबाद करती है उतना समय और पैसा थोड़े-से भले आदमियोंको सौंप दिया जाय तो राष्ट्रका उद्धार हो जाय। यह पार्लमेंट तो जनताका एक खिलौना मात्र है, उसके मनबहलावकी चीज है, जिसपर उसका बहुत पैसा खर्च हो जाता है। यह न समझिये कि ये विचार महज मेरे दिमागकी उपज है। बड़े-बड़े विचारवान् अंग्रेजोंके भी यही विचार हैं। एक मेंबरने तो हालमें यहाँतक कह दिया है कि पार्लमेंट इस लायक नहीं रही कि कोई सच्चा ईसाई उसका

सदस्य हो सके। एक दूसरे मेंबरका कहना है कि पार्लमेंट तो अभी 'दूधपीती बच्ची' (बेबी) है। पर बच्चा सदा बच्चा ही बना रहे, यह बात क्या आपने देखी है ? सात सौ सालकी हो जानेपर भी पार्लमेंट अगर 'बच्ची' ही बनी है तो सयानी कब होगी ?

पा०—आपकी बातोंने तो मुझे चक्करमें डाल दिया। इन सारी बातोंको मैं एकबारगी कबूल कर लूँ, यह तो आप कहेंगे ही नहीं। आप जो विचार मेरे मनमें बैठा रहे हैं वे बिल्कुल ही निराले हैं। मुझे उनको पचाना होगा। अच्छा, अब आप 'वेश्या' शब्दकी व्याख्या कीजिये।

सं०—आपका यह कहना बिल्कुल सही है कि आप मेरे विचारों को एकबारगी नहीं मान ले सकते। इस विषयपर आपको जो चीज़ें पढ़नी चाहिएं उन्हें जब आप पढ़ लेंगे तब मेरी बात को कुछ-कुछ समझ सकेंगे। पार्लमेंटको मैंने जो वेश्या कहा है वह भी ठीक ही है। उसका मालिक, मुख्तार कोई नहीं। उसका मालिक कोई एक आदमी तो हो ही नहीं सकता। पर मेरे कहनेका तात्पर्य इतना ही नहीं है। उसका धनी जब कोई बनता है, जैसे कि प्रधान मन्त्री, तब भी उसकी चाल एक-सी नहीं रहती। जो दुर्गति वेश्याकी होती है वही सदा उसकी होती रहती है। प्रधान मन्त्रीको पार्लमेंटकी चिन्ता अधिक नहीं होती। वह तो अपनी शक्ति के मद में चूर रहता है। उसका पक्ष कैसे जीते इसीकी चिन्ता उसे रहती है। पार्लमेन्ट ठीक काम कैसे करे, इसकी फिक्र उसे ज्यादा नहीं होती। अपने पक्षका बल बढ़ानेके लिए वह पार्लमेन्टसे कैसे-कैसे काम कराता रहता है, इसके उदाहरण जितने भी चाहिये मिल सकते हैं। ये सारी बातें विचारने योग्य हैं।

पा०—तब तो जिन्हें हम अबतक देशभक्त और सच्चे मानते आये हैं उनपर भी आप हमला कर रहे हैं।

सं०—हाँ, यह ठीक है। प्रधान मन्त्रियोंसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं। पर अनुभवने मुझे बताया है कि वे सच्चे देशभक्त नहीं कहे जा सकते। जिसे आम तौरसे घूस कहते हैं उसे वे नहीं लेते-देते। इसलिये आप भले ही उन्हें ईमानदार कह लें, पर सिफारिश, जोर-जरीयेकी पहुँच उन तक हो सकती है। दूसरों से काम लेनेके लिए उपाधियों आदिकी घूस वे खूब देते हैं। उनमें शुद्ध भाव और सच्ची ईमानदारीका अभाव है, यह बात मैं निस्संकोच कह सकता हूँ।

पा०—जब पार्लमेन्टके बारेमें आपके ऐसे विचार हैं तब जिस अंग्रेज जनताके नामपर वह राज्य करती है उसके बारेमें भी कुछ कहिये, जिससे अंग्रेजोंके स्वराज्यका पूरा नक्शा मेरे ध्यानमें आ जाय।

सं०—जो अंग्रेज चुनावमें मत देनेके अधिकारी, वोटर हैं उनकी बाइबिल अखबार हो रहे हैं। अखबारों के ही सहारे वे अपनी राय कायम करते हैं। अखबार ईमानदार नहीं हैं। एक ही बात को वे दो रूप देते हैं। एक पक्षवाला जिस बात को पर्वत बनाकर दिखाता है दूसरे पक्षवाला उसीको राई बना देता है। एक अखबार एक नेताको सचाईका अवतार कहेगा तो दूसरा उसे बेईमानोंका सरदार बतायेगा। ऐसे अखबार जिस देशमें हों वहाँके लोगोंकी अब दशा क्या होनी चाहिये?

पा०—यह तो आप ही बतायें।

सं०—ये लोग छन-छनमें अपने विचार बदला करते हैं। यह तो उन लोगोंमें कहावत ही है कि आदमी हर सात साल पर चोला बदलता है। घड़ीकी लटकनकी तरह वे लोग इधरसे उधर झूला करते हैं। ठीक ठिकानेसे बैठ ही नहीं सकते। कोई टीमटामवाला आदमी लम्बी-चौड़ी बात बना दे, या उनकी दावत-तवाजा कर दे, तो भाटकी तरह उसकी बिरदावली गाने लगेंगे। ऐसे लोगों की

पार्लमेन्ट भी वैसी होनी चाहिए। हाँ, उनमें एक खूबी ज़रूर है, वह यह कि अपने देशको कभी दूसरेका न होने देंगे। जो कोई उसपर नज़र गड़ाये उसकी आँखें ही फोड़ देंगे। पर इससे यह नहीं कह सकते कि वह राष्ट्र सर्वगुणनिधान या अनुकरणीय हो गया है। मेरी तो यह पक्की राय है कि हिन्दुस्तानने अगर उसकी नकल की तो वह नष्ट हो जायगा।

पा०—अंग्रेज जातिकी इस गिरावटका कारण आप क्या मानते हैं?

सं०—इसमें अंग्रेज़ोंका कोई खास दोष नहीं है। दोष है उनकी—बल्कि सारे यूरोपकी—आजकलकी सभ्यताका। यह सभ्यता वस्तुतः असभ्यता है और इसके कारण यूरोपके राष्ट्र दिन-दिन गिरते हुए नष्ट होते जा रहे हैं।

: ६ :

सभ्यता

पा०—अब तो आपको सभ्यताका अर्थ भी बताना होगा। आपके विचारसे तो जिसे हम सभ्यता कहते हैं वह असभ्यता हुई।

सं०—मेरे ही नहीं, अनेक अंग्रेज़ लेखकोंके विचारसे भी यह सभ्यता असभ्यता है। इस विषयपर बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं। इस सभ्यताके रोगसे राष्ट्रको बचानेके लिए संस्थाएं भी स्थापित हो रही हैं। एक बड़े अंग्रेज़ लेखकने तो 'सभ्यता, उसका कारण और इलाज' (सिविलाइजेशन, इट्स काज़ ऐण्ड क्योर) नामकी पुस्तक लिखी है जिसमें सभ्यताको एक प्रकारका रोग बताया है।

पा०—इन बातोंको हम जान क्यों नहीं पाते?

सं०—इसका कारण तो स्पष्ट है। अपने ही विरुद्ध बोलनेवाले बिरले ही होते हैं। आधुनिक सभ्यताकी मोहिनीसे मोहित जन उसके खिलाफ क्यों लिखने लगे? वे तो ऐसी ही बातें और दलीलें देंगे जिसमें उनका समर्थन हो। वे जान-बूझकर ऐसा करते हों, सो बात भी नहीं है। वे जो लिखते हैं उसे मानते भी हैं। सोता हुआ आदमी अपने सपनेको ठीक ही मानता है। अपनी भूलका पता उसे तभी चलता है जब उसकी नींद टूट जाती है। यही हाल सभ्यताके फन्देमें फंसे

हुए आदमीका होता है, हम जो कुछ पढ़ते हैं वह सभी आधुनिक सभ्यताके हिमायतियोंका लिखा हुआ होता है। उनमें अनेक बड़े बुद्धिमान और बहुत भले आदमी हैं। उनके तर्कका तेज हमारी आँखोंमें चकाचौंध पैदा करता है। यों एकके बाद दूसरा उस फन्देमें फंसता जाता है।

पा०—आपकी यह बात तो ठीक मालूम होती है। अब इस सभ्यताके बारेमें आपने जो कुछ पढ़ा और सोचा है उसका कुछ प्रसाद हमें भी देनेकी कृपा करें।

सं०—पहले तो इसपर विचार कीजिये कि सभ्यता किस तरहकी स्थितिको कहते हैं। इस सभ्यताकी पक्की पहचान तो यह है कि उसकी गोदमें पले हुए लोग बाहरकी खोज और शरीरके सुखको ही जीवनकी सार्थकता और परम पुरुषार्थ मानते हैं। इसकी कुछ मिसालें लीजिये। सौ साल पहले यूरोपके लोग जैसे घरोंमें रहते थे अब उनसे बहुत अच्छे घरोंमें रहते हैं। यह सभ्यताकी निशानी समझी जाती है और इसमें शरीर-सुखकी दृष्टि भी है। पहले वे लोग जानवरोंकी खाल ओढ़ते थे और भाला-बरछा उनके हथियार थे। अब वे लम्बे-चौड़े पाजामे पहनते और शरीरकी सजावटके लिए भाँत-भाँतके कपड़े बनाते हैं। भाले-बरछेके बदले लगातार ५-६ फैर करनेवाले पिस्तौल काममें लाते हैं। यह सभ्यताका लक्षण है। किसी देशके लोग जो पहले कोट-बूट न पहनते रहे हों यूरोपीय पहनावा पहनने लगें तो यह समझा जाता है कि जंगलीपनसे निकलकर सभ्यताकी स्थितिमें पहुँच गये। यूरोपके लोग पहले साधारण हलसे अपनी जरूरतभरकी जमीन जोत-बो लेते थे। अब भापकी कलसे हल चलाकर एक आदमी हजारों बीघा जमीन जोत सकता और बहुत पैसा बटोर सकता है। यह सभ्यताका चिन्ह माना जाता है। पहले जमानेमें इने-गिने लोग ही एक-दो किताबें लिखते थे और वे अमूल्य होती थीं।

आज जिसके जीमें जो आये लिखता, छुपाता और लोगोंको बहकाता है। यह भी सभ्यताकी निशानी है। पहले लोग बैलगाड़ियोंपर दिनभरमें १२ कोसका रास्ता तै कर पाते थे। अब रेलगाड़ियोंपर चार-चार सौ कोसकी मंजिल मारते हैं। यह तो सभ्यताकी चोटीपर पहुँच जाना समझा जाता है। अब तो यह माना जाने लगा है कि सभ्यता ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेगी, लोग हवाई जहाजसे सफर करेंगे और दो-चार घड़ीमें ही दुनियाके जिस हिस्सेमें चाहें पहुँच जायंगे। आदमियोंको हाथ-पाँव नहीं हिलाना होगा। एक बटन दबाया और पहननेके कपड़े सामने आ गये। दूसरा बटन दबाते ही ताज़ा अखबार मेजपर धरा होगा। तीसरे बटनपर उंगली रक्खी कि मोटर दरवाजेके सामने खड़ी होगी। नित्य नये-नये प्रकारके स्वादिष्ट भोजन मिलेंगे। खुलासा यह कि हाथ-पाँवका काम ही न पड़ेगा, कलके बलसे छोटे-बड़े सारे काम हो जायेंगे। पहले जब लोग लड़ते थे तो गुत्थम-गुत्था होती थी। आज पहाड़की आड़से तोप दागकर एक आदमी हजारोंकी जान ले सकता है। यह भी सभ्यताका सबूत है। पहले लोग खुली हवामें जबतक और जितना जी चाहे काम करते थे। अब हजारों आदमियोंको इकट्ठे होकर जीविकाके लिए कार-खानों या खानोंमें काम करना पड़ता है। उनकी दशा पशुओंसे भी गयी बीती है। उन्हें काँच आदिके कारखानोंमें जानकी जोखिम लेकर पिसना पड़ता है और उससे जेबें भरती हैं करोड़पतियोंकी। पहले लोगोंको मार-पीटकर गुलाम बनाते थे। अब उन्हें पैसे और पैसेसे मिलनेवाले सुख भोगका लालच देकर गुलाम बनाते हैं। आज-कल ऐसे-ऐसे रोग फैल रहे हैं जिनका पहले किसीने नाम भी न सुना होगा और डाक्टरोंकी पूरी पलटन उनका इलाज ढूंढ़नेमें लग रही है। इससे अस्पताल भी बढ़े हैं और यह सभ्यताका चिन्ह समझा जाता है। पहले कोई चिट्ठी लिखता तो उसके लिए खास आदमी भेजना होता और इसमें बहुत खर्च

पड़ता था। आज मुझे किसीको गालियाँ देनी हों तो एक पैसेका कार्ड खर्च कर दे सकता हूँ। किसीको धन्यवाद देना हो तो वह भी इतने ही खर्चका काम है। यह भी हमारे सभ्य होनेका सबूत है। पहले लोग दिनमें दो या तीन-बार हाथकी पकायी रोटी और थोड़ी साग-भाजी खाकर रहते थे। अब तो हर दो घण्टेपर खाना मिलना चाहिये और खाना इतना बड़ा काम हो गया है कि लोगोंको और कामोंके लिए फुरसतही नहीं मिलती।

कहाँ तक गिनाऊं। ये सारी बातें आपको प्रामाणिक मानी जानेवाली पुस्तकोंमें मिल सकती हैं। ये सभी बातें सभ्यताकी पक्की पहचान हैं। कोई आदमी इनके विरुद्ध कुछ कहे तो उसे निपट अनाड़ी मानिये। सभ्यता तो वही बातें मानी जायंगी जो मैंने गिनायी हैं। इस सभ्यताको न धर्मसे काम है न नीतिसे। उनके हिमायती साफ कहते हैं कि धर्म सिखाना हमारा काम नहीं है। बहुतेरे तो धर्मको महज एक ढकोसला माने हैं। कितने-ही धनका ढोंग रचते और नीतिपर लेकचर भी झाड़ते हैं। पर बीस बरसके अनुभवके बलपर मैं कह सकता हूँ कि नीतिके नामपर लोगोंको अनीति ही सिखायी जाती है। एक बच्चा भी समझ सकता है कि ऊपर जो बातें बतायी गयी हैं उनमें नीतिके लिए स्थान हो ही नहीं सकता। शरीरको सुख कैसे मिले, सभ्यता तो बस इसीकी खोज करती, इसीके साधन जुटानेमें श्रम करती है। पर यह सुख भी उसके हाथ नहीं लगता।

यह सभ्यता अधर्म है। पर यूरोपपर वह ऐसा छा रही है कि वहाँके लोग इसके पीछे पागल-से हो रहे हैं। उनमें सच्चा शारीरिक बल नहीं है। वे तो अपनी शक्तिको नशेपर टिकाये रखते हैं। अकेलेमें उनसे रहा ही नहीं जाता। स्त्रियोंको जिन्हें घरकी रानी बनकर रहना चाहिये गली-गली भटकना या कारखानोंमें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। अकेले इङ्गलैंडमें ही ४० लाख स्त्रियोंको पेट पालनेके

लिए खानों-करखानोंमें बैलकी तरह पिसना पड़ रहा है। स्त्रियोंको वोटका हक मिलनेका आंदोलन जो वहाँ दिन-दिन बढ़ रहा है उसका एक कारण यह भी है।

यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज रखें तो इसकी लपेटमें आये हुए लोग अपने हाथों सुलगायी हुई आगमें आप ही जल मरेंगे। हजरत मुहम्मदकी सीखके अनुसार तो यह सभ्यता शैतानका राज्य मानी जायगी। हिन्दूधर्म इसे घोर कलियुग कहता है। इस सभ्यताकी हूबहू तस्वीर आपके सामने रख सकना मेरे बूतेके बाहरकी बात है। पर आप इतना जान लें कि इस सभ्यताने ब्रिटिश राष्ट्रको घुन लगा दिया है। यह सभ्यता नाश करनेवाली और नाश होनेवाली है। इससे बचे रहनेमें ही हमारी भलाई है। इसीकी बदौलत ब्रिटिश पार्लमेण्ट और दूसरे देशोंकी पार्लमेण्टें भी निकम्मी हो गई हैं। निश्चय ही वे राष्ट्रकी गुलामीकी निशानी हैं। आप इस विषयपर पढ़ें और सोचें तो आपको भी यही दिखाई देगा। इसके लिए आपको अंग्रेजोंको दोष नहीं देना चाहिये। उनपर तो हमें तरस खाना चाहिये। वे समझदार आदमी हैं, इसलिए मैं तो मानता हूं कि वे इस माया-जालमेंसे निकल आयेंगे। वे साहसी और परिश्रमी हैं। उनके विचार मूलतः अनीतिमय नहीं हैं। इसलिए उनके विषयमें मेरे मनमें आदरका ही भाव है। उनकी हड्डीमें खराबी नहीं है। सभ्यता उनका असाध्य रोग नहीं है, पर फिलहाल वे इस मर्जमें मुब्तिला हैं, यह बात हमें भूलनी न चाहिये।

: ७ :

हिन्दुस्तान कैसे गया ?

पा०—सभ्यताके बारेमें तो आप इतना कह गये कि मैं विचार-सागर में डूबने-उतराने लगा हूँ। अब मैं इस उलझनमें पड़ गया हूँ कि यूरोप-वालोंसे हमें क्या लेना है और क्या नहीं लेना है। एक जिज्ञासा तो मेरे मनमें तुरत ही जग रही है—यह सभ्यता अगर असभ्यता है, रोग है, तो ऐसी सभ्यताके फन्देमें फँसे रहकर भी अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानको कैसे ले लिया और कैसे यहाँ बने हुए हैं ?

सं०—आपके सवालका जवाब देना अब कुछ आसान हो गया है और थोड़ी देर में हम स्वराज्यके स्वरूपपर भी विचार कर सकेंगे। आपके इस सवालका जवाब मुझे अभी देना है, इस बातको मैं भूल नहीं गया हूँ। पर पहले आपके पिछले प्रश्नको ही लें। हिन्दुस्तानको अंग्रेजोंने हमसे लिया नहीं, हमने खुद उन्हें सौंप दिया। हिन्दुस्तानमें वे अपने बलसे नहीं टिके हैं, हमने ही उन्हें टिका रखा है। कैसे, सो सुनिये। इस बातको याद कीजिये कि अंग्रेज हमारे देशमें वस्तुतः व्यापारीके रूपमें आये थे। अपनी (ईस्ट इण्डिया) कम्पनी बहादुरको याद कीजिये। उसे बहादुर किसने बनाया ? उस बेचारीका तो उस वक्त हमारे देशपर राज करनेका इरादा तक न था। कम्पनीके कर्मचारियोंकी किसने मदद की ? उनकी चाँदी देखकर किसकी राल टपकती थी ? उनका माल कौन बिकवाता था ?

इतिहास इसकी गवाही देता है कि यह सब हमींने किया। झटपट मालदार बन जानेके लोभसे हमने उनका स्वागत किया। हमीं उनकी मदद करते थे। मुझे भाँग छाननेकी आदत हो और कोई भाँग बेचनेवाला मेरे हाथ उसे बेचे तो मुझे किसे दोष देना चाहिए—बेचनेवालेको या अपने आपको ? बेचनेवालेको दोष देनेसे क्या मेरा व्यसन छूट जायगा ? एक बेचनेवालेको निकाल दिया तो क्या दूसरा मेरे हाथ भाँग न बेचेगा ? भारतके सच्चे सेवकको तो रोगकी जड़पर पहुँचना होगा। ठूँस ठूँसकर खा लेनेसे मुझे अपच हो जाय तो पानीका दोष निकालनेसे वह दूर नहीं होगा। सच्चा वैद्य तो वह है जो रोगकी जड़को पकड़े। आपको भारतके रोगका चिकित्सक बनना है तो रोगकी जड़पर पहुँचना ही होगा।

पा०—आपका कहना सही है। मुझे समझानेके लिए अब आपको दलीलें देनेकी जरूरत नहीं है। आपके विचार जाननेके लिए मैं अधीर हूँ। इस समय तो बड़ा दिलचस्प विषय चल रहा है। अतः आप कहते चलें, मुझे कहीं शंका होगी तो पूछ लूँगा।

सं०—बहुत खूब। पर मुझे डर है कि आगे बढ़नेपर हममें मतभेद अवश्य होगा। फिर भी जब आप टोकेंगे तभी दलीलें दूँगा। यह तो हमने देख ही लिया कि हमारे ही बढ़ावा देनेसे अंग्रेज व्यापारी यहाँ अपने पाँव पसार सके। इसी तरह हमारे राजा-नवाब जब आपसमें लड़े तो उन्होंने 'कम्पनी बहादुर' से मदद ली। 'कम्पनी बहादुर' व्यापार और युद्ध दोनों कलाओंमें कुशल थी। अपना व्यापार बढ़ाना और पैसा कमाना यही तो उसका उद्देश्य था। इसमें हमने उसकी मदद की तो उसने उसे खुशीसे कबूल किया और अपनी कोठियाँ बढ़ा लीं। कोठियोंकी हिफाजतके लिए उसने फौज रखी। इस फौजसे हमने भी काम लिया। अतः अब उन बातोंके लिए अंग्रेजोंको कोसनेमें कोई अर्थ नहीं। उस वक्त हिन्दू-

मुसलमानके बीच बैर भी था। कम्पनीने इसका फायदा उठाया। यों हिंन्दुस्तानके कम्पनीके हाथमें जानेमें हमने हर तरह मदद की। इसलिए 'हिन्दुस्तान हमारे हाथसे चला गया' कहनेके बजाय यह कहना ज्यादा सही है कि खुद हमींने उसे अंग्रेजोंके हाथ सौंप दिया।

पा०—अच्छा अब यह बतलाइये कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानको किस तरह अपने कब्ज़ेमें रखे हुए हैं?

सं०—जैसे हमने हिन्दुस्तानको उनके हवाले किया वैसे ही उनपर उनका राज्य बना रखनेवाले भी हमीं हैं। कुछ अंग्रेज़ कहते हैं कि हिन्दुस्तानको हमने तलवारके जोरसे लिया और आज भी तलवारकी ताकतसे ही उसे अपने कब्ज़ेमें रखे हुए हैं। ये दोनों बातें गलत हैं। हिन्दुस्तान पर कब्ज़ा रखनेमें तलवारका कोई काम ही नहीं पड़ता। हम खुद ही उन्हें यहाँ टिकाये हुए हैं।

नेपोलियनने अंग्रेज़ोंको बनिया कहा था जो सोलह आने सही है। यह बात जान लेनेकी है कि जिस-जिस देशपर वे राज कर रहे हैं उसे व्यापारके लिए ही अपने हाथमें रखते हैं। उनकी फौज और जंगी बेड़ा केवल व्यापारकी रक्षा के लिए है। ट्रांसवालमें जब व्यापार का सुभीता नहीं था तब मि० ग्लैडस्टनको झट यह बात सूझ गयी कि ट्रांसवालको अपने कब्ज़े में रखना अंग्रेज़ोंके लिए वाजिब नहीं। पर जब वहाँ उसका प्रसार होता दिखाई दिया तो अंग्रेज़ोंने उसके साथ युद्ध ठान दिया और मि० चेम्बरलेनने यह बात ढूँढ़ निकाली कि ट्रांसवालमें अंग्रेज़ोंको अधिराज-पद प्राप्त है। कहते हैं, स्व० राष्ट्रपति क्रूगरसे किसीने पूछा कि 'चन्द्रलोकमें सोना है या नहीं?' तो उन्होंने जवाब दिया कि "वहाँ सोना होना सम्भव नहीं, होता तो अबतक अंग्रेज़ोंने उसे अपने राज्यमें मिला लिया होता।" अंग्रेज़ों का परमेश्वर पैसा है, इस बातको हम याद रखें तो सारी बात

समझमें आ जायगी।

यों अपनी गरजसे ही हम अंग्रेज़ोंको हिन्दुस्तानमें टिकाये हुए हैं। हमें उनकी तिजारत पसन्द आती है। वे अपने छल-छद्मसे हमें रिझाते और हमसे मनचाहा काम करा लेते हैं। इसके लिए उन्हें दोष देना उनके राज्यकी जड़ और गहरी कर देना है। आपसमें लड़झगड़कर भी हम उनका बल और बढ़ा रहे हैं।

ऊपर जो बातें कही गयी हैं उन्हें आप ठीक मानें तो यह सिद्ध हो गया कि अंग्रेज़ यहाँ व्यापारके लिए ही रहते हैं और उन्हें टिकाये रहनेमें हमीं मददगार हैं। उनके हरबे-हथियार तो यहाँके लिए बिल्कुल बेकार हैं।

इस सिलसिलेमें आपको यह याद दिला देना चाहता हूँ कि जापानमें भी आज ब्रिटेनकी ही पताका फहरा रही है। जापानके साथ अंग्रेज़ोंने जो सन्धि की है वह व्यापारके लिए ही की गयी है और आप देखेंगे कि जापानमें वे अपना व्यापार कैसा फैलाते और चमकाते हैं। अंग्रेज़ चाहते हैं कि सारी दुनिया को अपने मालका बाजार बना दें। बेशक वे ऐसा कर नहीं सकते, पर यह उनका दोष नहीं माना जा सकता। अपनी कोशिशमें वे कसर रखनेवाले नहीं।

: ८ :

हिन्दुस्तानकी हालत

पा०—हिन्दुस्तान अंग्रेज़ोंके हाथमें क्यों है, यह बात तो समझमें आ गयी। अब हिन्दुस्तानकी हालतके बारेमें आपके विचार जानना चाहता हूँ।

सं०—हिन्दुस्तानकी आज बड़ी दीन दशा है। उसको सोचकर मेरी आंख भर आती हैं और कहते गला सूखता है मैं उसे पूरे तौरसे आपके सामने रख सकूँगा, इसमें मुझे शक है। यह तो मेरी पक्की राय है कि हिन्दुस्तान अंग्रेज़ोंके नहीं बल्कि आजकलकी सभ्यताके बोझसे पिस रहा है। इस पूतनाकी पकड़में वह आ गया है। इससे बचनेका उपाय है अवश्य, पर दिन-दिन वह अधिक कठिन होता जा रहा है। मुझे तो धर्म प्यारा है, इसलिए पहला दुःख मुझे यही है कि हिन्दुस्तान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। यहाँ धर्मसे मेरा मतलब हिन्दू, मुसलमान या पारसी धर्मसे नहीं है बल्कि उस धर्मसे है जो इन सभी धर्मोंका मूल तत्त्व है। वह लुप्त हो रहा है, हम ईश्वरसे विमुख होते जा रहे हैं।

पा०—सो कैसे ?

सं०—हम हिन्दुस्तानियोंपर यह दोष लगाया जाता है कि हम आलसी हैं और गोरे परिश्रमी और उत्साही हैं। इस आरोपको हमने सत्य मान लिया है और इसीलिए अपनी दशा बदलना चाहते हैं। हिन्दू, मुसलमान, पारसी,

ईसाई सभी धर्म यह सिखाते हैं कि हम सांसारिक वस्तुओंकी ओर उदासीन और धार्मिक बातोंमें उत्साहयुक्त रहें, अपने लौकिक लोभकी हद बाँध दें और धार्मिक लोभ सीमारहित हो। हमारा उत्साह-प्रयत्न इसी दिशामें होना चाहिए।

पा०—यह तो आप पाखण्डी बननेकी सीख दे रहे हैं। ऐसे ही ढोंग रचकर तो धूर्तोंने दुनियाको ठगा है और आज भी ठग रहे हैं।

सं०—आप धर्मपर मिथ्या आरोप कर रहे हैं। पाखण्ड तो सभी धर्मोंमें है। जहाँ धूप है वहाँ छाया होती ही है। छाया वस्तुमात्र की होती है। आप देखेंगे कि दुनियाकी बातोंमें ठगनेवालेसे धर्ममें धूर्तता करनेवाला अच्छा है। सभ्यतामें जो पाखण्ड मैंने आपको बतलाया है वह धर्ममें मुझे हर्गिज नहीं दिखाई देता।

पा०—यह आप कैसे कह सकते हैं? धर्मके नामपर हिन्दू-मुसलमान आपसमें लड़े, धर्मके नामपर ईसाइयोंमें महायुद्ध हुए। धर्मके नामपर हज़ारों निरपराध जन तलवारके घाट उतारे गये, जीते जला दिये गये, उनपर बड़े-बड़े जुल्म ढाये गये। यह सब तो सभ्यतासे खराब ही माना जायगा।

सं०—मेरा तो कहना है कि सभ्यताके कष्टोंकी बनिस्बत इस सबको सह लेना कहीं आसान है। आपने जिन अत्याचारों की बात कही है सभी जानते हैं कि वे पाखण्ड हैं, धर्मसे उनका कोई लगाव नहीं। इसलिए उस पाखण्डमें फंसे हुए मनुष्योंकी मृत्युके साथ ही उस पाखण्डकी समाप्ति हो जाती है। यों तो जहाँ भोले, अज्ञान लोग होंगे वहाँ ऐसा होता ही रहेगा। पर उसका असर सदाके लिए बुरा नहीं रहता। सभ्यताकी आगमें जल मरनेवालोंकी विपतका तो अन्त ही नहीं होता। मजा तो यह है कि लोक उस आगको हितकर समझकर उसमें कूदते हैं। वे न दीनके रहते हैं न दुनियाके। असलीयतको वे बिल्कुल ही भूल जाते हैं।

सभ्यता तो चूहेकी तरह हमें कुतर-कुतरकर खाती है और हमें गुदगुदीका सुख मिलता है। इसके असरका पता जब हमें लगेगा तो पिछले जमानेका अन्ध-विश्वास उसकी तुलनामें अच्छा जान पड़ेगा। मैं यह नहीं कहता कि ये अन्ध-विश्वास या वहम हमें बनाये रखना चाहिए। उनसे तो हमें भिड़ना ही होगा, पर यह लड़ाई धर्मको भूलकर नहीं लड़ी जा सकती, बल्कि सच्चे अर्थमें धर्मका सम्पादन करके ही लड़ी जा सकती है।

पा०—तब तो आप यह भी कहेंगे कि अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानको जो शांतिका सुख दिया है वह निरर्थक है?

सं०—आप शांतिका सुख भले ही देखते हों, मुझे तो वह नहीं दिखाई देता।

पा०—तब ठग, पिंडारी, भील आदि देशमें जो आतंक फैला रहे थे आपके विचारसे उससे कुछ अधिक हानि न थी!

सं०—आप जरा सोचकर देखें तो मालूम होगा कि उनका आतंक कोई बड़ी चीज नहीं था। वह सचमुच वैसा होता तो अंग्रेजोंके पधारनेके बहुत पहले ही हमारा सफाया हो गया होता। फिर आजकी शांति भी तो नामकी ही शांति है। मेरा कहना है कि इस शांतिसे हम नामर्द, कायर और बुज़दिल बन गये हैं। यह नहीं मान लिया जा सकता कि भीलों और पिंडारियों का स्वभाव अंग्रेजोंने बदल दिया। इस तरहके कष्ट हमें मिलें तो उन्हें सह लेना ही अच्छा है। पर कोई दूसरा आकर हमें उससे बचाये, यह हमारे लिए बड़ी हीनता की बात है। यों नामर्द बननेसे मैं तो भीलोंके तीर खाकर मर जाना ज्यादा पसन्द करूँगा। उस स्थितिवाले हिन्दुस्तानका दम-खम कुछ और ही था। मैकालेने हिन्दुस्तानियोंको कायर बताकर अपने घोर अज्ञानका ही परिचय दिया है। हिन्दुस्तानी कभी कायर

थे ही नहीं। जिस देशमें पहाड़ी लोग बसते हों, जहाँ बाघ भेड़िये रहते हों, उस देशके रहनेवाले सचमुच डरपोक हों तो वे जल्दी ही नामशेष हो जायँ। आप कभी खेतोंपर गये हैं? मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि हमारे किसान अपने खेतोंमें निर्भय होकर सोते हैं, जब कि अंग्रेज और हम-आप वहाँ सोनेकी हिम्मत न करेंगे। थोड़ा-सा भी सोचनेसे आप समझ सकते हैं कि बल निर्भयतामें है, शरीरपर मांसके अधिक लोथड़े लद जानेमें नहीं है।

फिर आप लोगोंको जो स्वराज्य चाहते हैं मैं इस बातकी याद दिला-देना चाहता हूँ कि भील, पिंडारी, आसामी और ठग, हमारे ही देश भाई हैं। उन्हें जीतना आपका और हमारा काम है। अपने ही भाईसे जबतक आप डरते रहेंगे तबतक आप अपनी मंजिलपर पहुँचनेके नहीं।

: ६ :

हिन्दुस्तानकी हालत—२

रेल

पा०—हिन्दुस्तानकी शांतिका मुझे जो मोह था वह तो आपने ले लिया। अब आपने मेरे पास क्या रहने दिया, यह मुझे याद नहीं आता।

सं०—अभी तो मैंने केवल धर्मकी दशापर अपने विचार आपको बताये हैं। पर हिन्दुस्तान क्यों कंगाल है, इस विषयमें अपने विचार जब आपके सामने रखूँगा तब तो शायद आपको मुझसे ही नफरत होने लगेगी, क्योंकि आजतक हम-आप जिस चीजको हिन्दुस्तानके लिए हितकर मानते आये हैं मुझे वह हानिकर जान पड़ती है।

पा०—आखिर वह है क्या?

सं०—हिन्दुस्तानको रेलों, वकीलों और डाक्टरोंने कंगाल बनाया है, और उसकी दशा ऐसी हो गयी है कि अगर हम वक्तसे न चेत गये तो चारों ओरसे विपद्में घिर जायँगे।

पा०—अब मुझे अवश्य इसका डर लग रहा है कि मेरा आपका मेल शायद न बैठेगा। आप तो उन सभी चीजोंपर चोट करने लगे जो अब तक अच्छी मानी जाती थीं। अब बाकी ही क्या रहा?

सं०—आपको थोड़ा सब्रसे काम लेना होगा। सभ्यताका असभ्य रूप आपको जरा मुश्किलसे ही समझमें आयेगा। वैद्य-हकीम कहते हैं, क्षयका रोगी मृत्युके क्षण तक जीनेकी आशा रखता है। इस रोगका घातक प्रभाव ऊपरसे नहीं दिखाई देता, बल्कि रोगीके चेहरेपर झूठी सुर्खी आ जाती है जिससे वह अपने आपको भला चंगा समझता है और अन्तमें जिन्दगीसे हाथ धोता है। यही हाल सभ्यताका है। वह अदृश्य रोग है, उससे होशियार रहिये।

पा०—अच्छा, अब रेलवे-पुराण सुनाइये।

सं०—इतना तो आप समझ ही सकते हैं कि रेलें न हों तो हिन्दुस्तानपर अंग्रेजोंका जितना काबू आज है उतना न रहेगा। रेलोंने ही यहाँ प्लेगकी महामारी फैलायी। रेलें न हों तो लोगोंका एकसे दूसरी जगह जाना बहुत कम हो जाय और छूतवाली बीमारियाँ सारे देशमें न फैलें। हम पहले स्वाभाविक रूपमें 'सेग्रिगेशन' (सूतक) मनाते थे। रेलोंसे अकालका पड़ना बढ़ा है, क्योंकि रेलका सुभीता पाकर लोग अपना अनाज बेच डालते हैं। जहाँ महँगी अधिक हो वहाँ अनाज खिंच जाता है। लोग लापरवाह हो जाते हैं और इससे अकालका दुःख बढ़ता है। रेलोंसे दुष्टता भी बढ़ रही है, बुरे आदमी अपनी बुराई अब ज्यादा तेजीसे फैला सकते हैं। हिन्दुस्तानके पवित्र स्थान अपवित्र हो गये हैं। पहले लोग बड़े कष्ट-कठिनाइयाँ उठाकर वहाँ पहुँच पाते थे, इसलिए सच्चे भक्ति-भाव वाले ही भगवद्भजनके लिए वहाँ जाते थे। अब तो ठगोंकी टोली अपनी ठगविद्या दिखानेके लिए ही वहाँ जाती है।

पा०—यह तो आपने एकतरफा बात कही। बुरे आदमी वहाँ जा सकते हैं तो भले भी तो जा सकते हैं। वे लोग रेलोंका पूरा लाभ क्यों नहीं लेते?

सं०—भलाई तो चींटी की चालसे चलती है, इसलिए रेलोंसे उसका साथ

नहीं निभ सकता । भलाई करनेवाले स्वार्थी नहीं होते । वे जल्दबाजी नहीं करते। वे जानते हैं कि आदमीपर आदमीकी छाप पड़नेके लिए एक जमाना चाहिए। लेकिन बुराईके तो पर होते हैं । घरको बनाना मुश्किल है, गिराना बहुत आसान है । इसलिए रेलें बुराई ही फैलायेंगी, इसे पक्का समझिये। रेलोंसे अकाल फैलता है या नहीं, इस विषयमें तो कोई अर्थशास्त्री छनभरके लिए हमारे मनमें शंका उत्पन्न कर सकता है, पर उनसे बुराई बढ़ती है यह बात तो मेरे मनमें पत्थरपरकी लकीर बन गयी है जो कभी मिटनेकी नहीं ।

पा०—रेलोंसे जो सबसे बड़ा लाभ है वह दूसरी सब हानियोंको ढक देता है। आज हिन्दुस्तानमें हम जो एक राष्ट्रकी भावना जगी देख रहे हैं वह तो रेलोंकी ही बदौलत है। इसलिए मैं तो कहता हूँ कि रेलोंका आना हमारे लिए अच्छा ही हुआ।

सं—यह आपका भ्रम है। यह बात तो हमें अंग्रेजोंने सिखायी कि है हम पहले एक राष्ट्र न थे और हमारे एक राष्ट्र होनेमें सदियाँ लग जायँगी । यह बात नितान्त निराधार है । अंग्रेज जब हिन्दुस्तानमें नहीं आये थे तब भी हम एक राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारी रहन-सहन एक थी, तभी तो वे सारे देश-पर अपना एक-छत्र राज्य स्थापित कर सके। भेद बिलगाव तो पीछे उन्होंने पैदा किया।

पा०—इस बातको जरा विस्तारसे समझाना होगा ।

सं—मैं जो कहता हूँ बिना सोचे-समझे नहीं कहता । एक राष्ट्र होनेके मानी यह नहीं है कि हमारे बीच कोई भेद-बिलगाव था ही नहीं । पर हमारे प्रमुख-जन पाँव-पियादे या बहलियोंमें बैठकर सारे भारतका भ्रमण करते थे, एक दूसरेकी भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई बिलगाव न था। जिन दीर्घदर्शी पुरुषोंने

सेतुबंधरामेश्वर (दक्षिण), जगन्नाथपुरी (पूर्व) और हरद्वार (उत्तर) की यात्राका विधान किया, उनके विचार आपकी समझसे क्या रहे होंगे ? यह तो आप मानेंगे ही कि वे मूर्ख नहीं थे। भगवानका भजन तो घर बैठे ही हो सकता है। उन्होंने तो हमें सिखाया है कि 'मन चंगा तो कठौतीमें गंगा' पर उन्होंने सोचा कि प्रकृतिने भारतको एक अखण्ड देश बनाया है और उसे एक राष्ट्र होना चाहिए। इसलिए उन्होंने उसके विभिन्न भागोंमें तीर्थोंकी स्थापना कर जनताके मनमें एकताकी भावना इस रीतिसे जगाई जिसकी मिसाल दुनियामें और कहीं नहीं मिलती। दो अंग्रेजोंमें जितनी एकता नहीं है उतनी हिन्दुस्तानियोंमें थी और है। यह तो हम-आप जो अपने आपको सभ्य और सुधरे हुए मानते हैं उन्हींका मन हिन्दुस्तानको भिन्न-भिन्न जातियोंकी खिचड़ीरूपमें देखता है। रेलोंसे ही हम अपने आपको एकसे अनेक राष्ट्र मानने लगे। फिर भी अगर आप यह मानें कि रेलोंसे ही हमारे अन्दर एक राष्ट्र होनेकी भावना जागी तो मुझे इसमें कोई एतराज नहीं। अफीमची भी कह सकता है कि अफीमकी बुराइयोंका पता मुझे अफीम खानेसे ही लगा इसलिए अफीम अच्छी चीज है। मैंने जो कुछ कहा है उसपर आप भली-भाँति विचार करें। शंकाएँ तो अब भी आपके मनमें उठेंगी, पर उनका समाधान आप स्वयं कर लेंगे।

पा०—आपने जो कुछ कहा है उसपर मैं विचार करूंगा, पर एक सवाल तो इसी छन मेरे मनमें उठ रहा है। आपने तबके हिन्दुस्तानकी बात कही है जब मुसलमान इस देश में दाखिल नहीं हुए थे। पर अब तो यहाँ मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयोंकी इतनी बड़ी तादाद है। वे एक राष्ट्र कैसे बन सकते हैं ? हिन्दू-मुसलमानका तो सहज बैर बताया जाता है। 'मियाँ और महादेवकी नहीं पटती' जैसी कहावतें भी अपने यहाँ चल पड़ी हैं। पूजामें हिन्दूका मुँह पूरबको होता है तो

मुसलमानका पच्छिमकी ओर। मुसलमान हिन्दुओंको बुतपरस्त-मूर्तिपूजक कहकर उनका तिरस्कार करते हैं। हिंदू मूर्तिपूजक (बुतपरस्त) हैं तो मुसलमान मूर्तिभंजक (बुतशिकन)। हिन्दू गायकी पूजा करता है, मुसलमान उसका वध करता है। हिन्दू अहिंसावादी है, मुसलमान हिंसावादी। इस प्रकार दोनोंमें पग-पगपर विरोध है। वह कैसे मिट सकता है और कैसे हिन्दुस्तान एक राष्ट्र हो सकता है?

: १० :

हिन्दुस्तान की हालत—३

हिन्दू-मुसलमान

सं०—आपका पिछला सवाल बड़ा टेढ़ा दिखाई देता है, पर थोड़ा सोचनेसे आसान मालूम होगा। इस सवालके उठनेका कारण भी रेल, वकील और डाक्टर हैं। इनमेंसे वकील और डाक्टरका विचार तो अभी हमें करना बाकी है। रेलोंपर हम विचार कर चुके। पर इतना मैं और कहूँगा कि प्रकृतिने मनुष्यको कुछ ऐसा बनाया है कि उसे अपनी आवा-जाही वहीं तक रखनी चाहिए जहाँतक वह अपने हाथ-पाँवके बूतेसे आ-जा सके। अगर हम रेल वगैरह सवारियोंके सहारे दौड़-धूप न करें तो बहुत-सी परेशानियोंसे बच जायँ। हम तो खुद तकलीफें मोल लेते हैं। मनुष्यके पुरुषार्थकी हद ईश्वरने उसके शरीरकी बनावटमें ही बाँध दी है, पर उसने उस हदको लाँघ जाने का उपाय ढूँढ़ निकाला। इन्सानको अक्ल इसलिए दी गई कि वह खुदाको पहचाने, पर उसने उसका उपयोग भगवानको भूल जानेमें किया। प्रकृतिने मेरी शक्तियोंकी जो हद बाँध दी है उसको देखते हुए मैं केवल अपने आस-पासके आदमियोंकी ही सेवा कर सकता हूँ। पर अपने बलके घमंडमें मैं यह मान बैठा कि अपने इस साढ़ेतीन हाथके शरीरसे मुझे सारी दुनियाकी सेवा करनी चाहिए। इस कोशिशमें विभिन्न

धर्मोंके माननेवाले और विभिन्न विचार-स्वभावके लोगोंसे हमारा साबिका पड़ता है और इतना बोझ आदमी के उठाये उठ नहीं सकता, इसलिए पीछे वह परेशान होता है। इस विचारसरणिसे आप समझ लेंगे कि रेलें सचमुच शैतानी के साधन हैं। उनसे काम लेकर आदमी भगवानको भूल गया है।

पा०—पर मैं तो अपने सवालका जवाब सुननेको अधीर हो रहा हूँ। मुसलमानोंके इस देशमें प्रवेशसे हमारा एक राष्ट्र होना बना रहा या चला गया ?

सं०—हिन्दुस्तानमें चाहे जिस मजहबके माननेवाले रहें, उससे हमारी एकराष्ट्रता मिटनेवाली नहीं। नये आदमियोंका आगमन किसी राष्ट्रका राष्ट्रपन नष्ट नहीं कर सकता। ये उसीमें घुल-मिल जाते हैं। ऐसा हो तभी कोई देश एक राष्ट्र माना जाता है। उस देशमें नये आदमियोंको पचा लेनेकी शक्ति होनी चाहिए। हिन्दुस्तानमें यह शक्ति सदा रही है और आज भी है। यों तो सच पूछिये तो दुनियामें जितने आदमी हैं उतने ही धर्म मान लिये जा सकते हैं। पर एक राष्ट्र बनकर रहनेवाले लोग एक दूसरेके धर्ममें दखल नहीं देते। करें तो समझ लीजिये कि वे एक राष्ट्र होनेके काबिल ही नहीं हैं। हिन्दू अगर यह सोचें कि सारा हिन्दुस्तान हिन्दुओंसे ही भरा हो तो यह उनका स्वप्नमात्र है। मुसलमान यह मानें कि केवल मुसलमान इस देशमें बसें तो इसे भी दिनका सपना ही समझना होगा। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई जो कोई भी इस देशको अपना देश मानकर यहाँ बस गये हैं वे सब एकदेशी, एक मुल्की हैं, देशके नाते भाई-भाई हैं और अपने स्वार्थ, अपने हितकी खातिर भी उन्हें एक होकर रहना होगा। दुनियामें कहीं भी एक राष्ट्रका अर्थ एक धर्म नहीं माना गया, हिन्दुस्तान में भी कभी नहीं रहा।

पा०—पर हिन्दू-मुसलमानके सहज बैरकी बात ?

सं०—'सहज बैर' शब्द तो उन लोगोंके दिमागकी उपज है जो दोनोंके

दुश्मन हैं। जब हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेसे लड़ते थे तब वे ऐसी बात जरूर कहते थे। पर उनकी लड़ाई तो कबकी खत्म हो चुकी है। तब उनमें सहज वैर कैसा? फिर यह भी याद रखिये कि अंग्रेजोंके आनेके बाद हमने लड़ना बन्द किया हो, सो बात भी नहीं है। हिन्दू मुसलमानके और मुसलमान हिन्दूके राज्यमें रहते आये हैं। कुछ दिन बाद दोनोंने समझ लिया कि लड़ने-झगड़नेमें किसीका लाभ नहीं। लड़नेसे जैसे कोई अपना धर्म नहीं छोड़ता वैसे ही अपना हठ भी नहीं छोड़ता। इसीलिए दोनोंने आपसमें मेल-जोलसे रहनेकी ठहरा ली। झगड़े तो अंग्रेजोंने फिरसे शुरू कराये।

'मियाँ और महादेवकी नहीं पटती' कहावत भी तभी की है जब दोनों आपसमें लड़ रहे थे। कितनी ही कहावतें लोगोंकी जबानोंपर चढ़ जाती हैं और उन्हें दुहराते रहना हानिकर होता है। इन कहावतोंकी धुनमें हमें यह भी याद नहीं रहता कि बहुतसे हिन्दू-मुसलमानोंके बाप-दादा एक ही थे। नकी धमनियोंमें एक ही रक्त बह रहा है, धर्म बदलनेसे क्या हम एक दूसरेके दुश्मन हो गये? धर्म तो एक ही जगह पहुंचनेके जुदा-जुदा रास्ते हैं। जब मंजिल एक है तो दोनोंके दो अलग-अलग रास्ते पकड़नेसे क्या बिगड़ गया? इसमें दुःख मानने, आपसमें लड़ने-झगड़नेकी कौन-सी बात है?

फिर ऐसी कहावतें तो शैवों-वैष्णवोंके बीच भी प्रचलित हैं। पर इससे कोई यह नहीं कहता कि दोनों एक ही राष्ट्रके अंग नहीं हैं। वैदिक धर्मी और जैनके बीच बहुत अन्तर माना जाता है, पर इससे दोनों दो राष्ट्रके नहीं हो जाते। हम गुलाम हो गये हैं इसीसे आपसमें लड़ते और अपने झगड़े तीसरेके पास तस्फियेके लिए ले जाते हैं। जैसे मुसलमान मूर्तिपूजाका खण्डन करते हैं वैसे ही एक पन्थ हिन्दुओंमें भी दिखाई देता है। ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान बढ़ता जायगा त्यों-त्यों हम

यह समझते जायँगे कि हमारा पड़ोसी हमें न रुचनेवाले धर्मका अनुसरण करता हो तो हमें उससे बैर न रखना चाहिये, उसके साथ जोर-जबर्दस्ती न करनी चाहिये।

पा०—अच्छा, अब गोरक्षाके बारेमें अपने विचार बताइये।

सं०—मैं खुद गायको पूजता हूँ, यानी इज्जत करता हूँ। गाय हिन्दुस्तानकी रक्षा करनेवाली है, क्योंकि कृषिप्रधान देश होनेके कारण उसकी सन्तानपर ही हिन्दुस्तानका आधार है। गाय सैंकड़ों रूपों में हमारे लिये उपयोगी प्राणी है। उसकी उपयोगिता तो हमारे मुसलमान भाई भी स्वीकार करेंगे।

पर जैसे मैं गायको पूजता हूँ वैसे ही मनुष्यको भी तो पूजता हूँ। जैसे गाय उपयोगी है वैसे ही मनुष्य भी उपयोगी है, फिर चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। तब क्या गायको बचानेके लिए मैं मुसलमानसे लड़ूँगा, उसकी हत्या करूँगा? ऐसा करके तो मैं गाय और मुसलमान दोनोंका दुश्मन बनूँगा। इसलिए मेरी समझसे तो गायकी रक्षाका एक ही उपाय है—मैं अपने मुसलमान भाईके पास जाकर हाथ जोड़ूँ और देशकी भलाईके खातिर उसे गायकी रक्षा करनेके लिए समझाऊँ। वह न समझे तो मुझे गायको यह सोचकर जाने देना चाहिये कि उसे बचाना मेरे बसकी बात नहीं है। मुझे गायपर बहुत ही दया आती हो तो उसे बचानेके लिए खुद अपनी जान दे देनी चाहिए पर किसी मुसलमानकी जान हर्गिज न लेनी चाहिए। मैं तो मानता हूँ कि यही हमारे धर्मका आदेश है।

'हाँ' और 'ना'का सदा बैर है। मैं बहस करूँ तो मुसलमान भाई भी वैसा करेगा। मैं टेढ़ा हूँगा तो वह भी टेढ़ा होगा। मैं बालिश्त भर झुकूँ तो वह हाथ भर झुकेगा। और न भी झुके तो यह नहीं कहा जा सकता कि मैंने झुककर गलती की। हमने गोरक्षाका हठ पकड़ा तो अधिक गायें काटी जाने लगीं। मेरी रायमें गोरक्षा-प्रचारिणी सभाओंको गोवध-प्रचारिणी सभाएँ मानना चाहिये। ऐसी

सभाओंका अस्तित्व हमारे लिए लज्जाकी बात है। जब हम गायकी रक्षा करना भूल गये तभी ऐसी सभाओंकी आवश्यकता हुई होगी।

मेरा सगा भाई गायको मारने दौड़े तो मेरा क्या कर्तव्य होगा? मैं उसे कतल कर दूँ या उसके पावँ पड़ूँ? अगर आप कहें कि मुझे उसके पावँ पड़ना चाहिये तो फिर मुसलमान भाईके साथ भी मुझे वही करना चाहिये।

खुद हिन्दू ही जब गायको सता-सताकर उसका वध करता है तब कौन उसे बचाता है? गायकी सन्तान बैलको हिन्दू जब पैनेसे पीटता है तब कौन उसे समझाता है? पर इससे हमारे एक राष्ट्र बने रहनेमें कोई अड़चन नहीं पड़ी।

अन्तमें अगर यह सच है कि हिन्दू अहिंसक और मुसलमान हिंसक है तो अहिंसकका धर्म क्या है? अहिंसा धर्म को माननेवाला किसी आदमीकी हिंसा करे, यह कहीं नहीं लिखा है। अहिंसावादीका रास्ता तो सीधा है। एकको बचानेके लिए वह दूसरेकी हत्या कर ही नहीं सकता। उसका कर्तव्य तो केवल मारनेवालेके पावँ पड़ना होता है, यही उसका पुरुषार्थ है।

पर क्या हर एक हिन्दू अहिंसक है? जड़पर जाइए तो कोई भी अहिंसक नहीं है, क्योंकि जीवहिंसा तो हमलोग करते ही हैं। पर हम उससे बचना चाहते हैं इसलिए अहिंसावादी कहाते हैं। मोटे हिसाब देखिये तो बहुतेरे हिन्दू मांसाहारी हैं इसलिए वे अहिंसा-धर्मको माननेवाले नहीं कहे जा सकते। खींच तानकर अहिंसा-का दूसरा अर्थ करना हो तो जुदी बात है। तब यह कहना सर्वथा असंगत है कि चूँकि हिन्दू अहिंसावादी और मुससमान हिंसावादी है, इसलिए दोनोंका मेल नहीं हो सकता।

ये विचार स्वार्थी, धर्मध्वज धर्मोपदेशकों, पण्डितों और मुल्लाओंने हमारे दिमागोंमें भरे हैं। जो कसर रह गई थी वह अंग्रेजोंने पूरी कर दी। उन्हें

इतिहास लिखनेकी आदत है। हर जातिके रीति-रिवाजों और तौर-तरीकोंका अध्ययन करनेका वे ढोंग करते हैं। ईश्वरने मनुष्यको नन्हा सा मन-थोड़ी-सी बुद्धि दी, पर वे खुदाई का दावा करने लगे और तरह-तरहके प्रयोग, परीक्षाएँ किया करते हैं। अपना ढोल वे आप ही पीटते और हमारे मनपर अपनी बातोंकी छाप डाल देते हैं। अपने भोलेपनसे हम उन सब बातोंको सही मान लेते हैं।

जो उजलेको काला नहीं देखना चाहता वह देख सकता है कि कुरान शरीफ़में ऐसे सैकड़ों वचन हैं जिन्हें हिन्दू मान सकता है और भगवद्गीतामें ऐसी बीसियों बातें हैं जिनके खिलाफ़ कोई मुसलमान कुछ कह ही नहीं सकता। कुरानशरीफ़की कुछ बातें मेरी समझ में न आयें या मुझे न रुचें तो इस कारण क्या मुझे उसे माननेवालेसे नफरत करनी चाहिए? ताली एक हाथसे नहीं बजती। मुझे झगड़ा करना ही न हो तो मुसलमान क्या कर सकता है? इसी तरह मुसलमानको मुझसे लड़ना ही न हो तो मैं क्या कर सकता हूँ? जो हवाको घूँसा मारने जायगा उसका हाथ उखड़ जायगा। सब लोग अपने-अपने धर्मका तत्त्व समझकर उसपर आरूढ़ रहें, पंडितों, मुल्लाओंको टाँग न अड़ाने दें, तो झगड़ेका मुँह काला ही रहेगा।

पा०—पर क्या अंग्रेज दोनों कौमोंको कभी मिलने देंगे?

सं०—यह सवाल कायर, बुजदिल आदमी ही कर सकता है। यह हमारी हीनताकी सूचना देता है। दो भाई आपसमें मिलकर रहना चाहें तो कौन उन्हें बिलग कर सकता है? कोई तीसरा आदमी उनमें झगड़ा करा सकता हो तो हम उन्हें कच्चे दिलका ही समझेंगे। इसी तरह अगर हम हिन्दू-मुसलमान कच्चे दिलके हों तो फिर अंग्रेजोंको दोष देनेकी जरूरत नहीं। कच्चा घड़ा एक नहीं तो दूसरे ढेलेसे फूट ही जायगा। उसे बचानेका उपाय उसे ढेलोंसे बचाते रहना नहीं है,

बल्कि उसे पक्का कर देना है जिससे ढेलोंका डर ही न रहे। इसी तरह हमें अपने दिलोंको भी पक्का-पोढ़ा बना लेना चाहिये। दो में से एक भी पक्के दिलका हो जाय तो तीसरे की दाल न गलेगी। हिन्दू इस कामको आसानीसे कर सकते हैं। उनकी संख्या बड़ी है, वे अपनेको अधिक पढ़ा-लिखा भी मानते हैं। इसलिए वे अपने दिलको पक्का रख सकते हैं।

दोनों जातियोंको एक दूसरेपर अविश्वास है। इसलिए मुसलमान लार्ड मारले से* कुछ विशेषाधिकार माँग रहे हैं। हिन्दू इसका विरोध क्यों करें? हिन्दू विरोध न करें तो अंग्रेज चौंकें, मुसलमान धीरे-धीरे हिन्दुओंका विश्वास करने लगें और दोनोंमें भाईचारा बढ़े। अपने झगड़े अंग्रेजोंके पास ले जाते हुए हमें शर्म आनी चाहिये। आप खुद समझ सकते हैं कि ऐसा करके हिन्दू कुछ खोयेंगे नहीं। जो दूसरेके दिलमें अपना विश्वास उत्पन्न कर सका उसने आज तक कुछ गँवाया नहीं।

मैं यह नहीं कहता कि हिन्दू-मुसलमान कभी लड़ेंगे ही नहीं। साथ रहनेवाले दो भाइयोंमें झगड़ा होता ही है। कभी-कभी तो सिरफुड़ौवल की भी नौबत आ जाती है। इसकी जरूरत न होनी चाहिये। पर सभीकी मति एक-सी नहीं होती। लोग जब गुस्सेमें होते हैं तब साहस, अविचारके बहुतसे काम कर डालते हैं। उन्हें हमें सहन करना ही होगा। पर अपने ऐसे झगड़े हमें बड़े-बड़े वकील करके अंग्रेजी अदालतों में नहीं ले जाना चाहिये। दो आदमी लड़े, दोनों या एकका सिर फूटा, अब तीसरा इसमें क्या न्याय करेगा। जो लड़ेंगे वे चोट खायेंगे ही। देह-देहसे भिड़े तो इसकी निशानी रहनी ही चाहे। इसमें भला न्याय क्या हो सकता है?

---

*तत्कालीन भारतमंत्री (१९०-९१०)

: ११ :

हिन्दुस्तानकी हालत—४

वकील

पा०—आप कहते हैं कि दो आदमी लड़ें तो न्यायके लिए अदालत भी न जायँ। यह तो कुछ अजीब-सी बात है।

सं०—अजीब कहिये या और कोई विशेषण लगाइये। पर बात सच्ची है। आपकी शंका हमें वकील डाक्टरकी याद दिला रही है। मेरी तो पक्की राय है कि वकीलोंने हिन्दुस्तानको गुलामीमें फंसाया, हिन्दू-मुसलमानका झगड़ा बढ़ाया और अंग्रेजी हुकूमतकी जड़ मजबूत की है।

पा०—ऐसे इलजाम लगाना तो आसान है। पर साबित करना कठिन होगा। वकील न होते तो आपको आजादीकी राह कौन दिखाता? गरीबोंका बचाव कौन करता? उन्हें दाद कौन दिलाता? स्वर्गीय मनमोहन घोषने कितनों को बचाया और इसके लिए उनसे एक पैसा भी नहीं लिया। जिस कांग्रेसका आप ही इतना बखान कर गये हैं वह तो वकीलोंके ही दमसे कायम है और उन्हींकी मेहनतसे उसका काम चलता है! ऐसे प्रतिष्ठित पेशेकी निन्दा करना अन्याय है। यह तो ऐसा जान पड़ता है जैसा अपने हाथमें अखबार होनेसे आप जो जीमें आये वह लिख मारनेकी छूट ले रहे हैं।

सं०—आप जो मानते हैं किसी समय मैं भी वही मानता था । और वकीलोंने कभी कोई अच्छी बात की ही नहीं, यह तो मैं आपसे कहता भी नहीं। श्रीमनमोहन घोषकी मैं इज्जत करता हूँ । उन्होंने गरीबों की मदद की यह बात बिलकुल सही है । कांग्रेसमें वकीलोंने कुछ किया है, यह भी कबूल किया जा सकता है । आखिर वकील भी तो आदमी हैं और मनुष्यमात्रमें थोड़ी-बहुत भलाई रहती ही है । वकीलोंकी भलमनसीके जो उदाहरण देखनेमें आये हैं उनमेंसे अधिकांश उस समय उनसे बन पड़े हैं जब वे अपना वकील होना भूल गये थे । पर मुझे तो आपको इतना ही बताना है कि वकीलोंका धन्धा ऐसा है जो उन्हें अनीति सिखाता है । वह उन्हें लोभके गढ़ेमें गिराता है जिससे थोड़े ही निकल पाते हैं ।

हिन्दू-मुसलमान किसी दिन आपसमें लड़ पड़े । अब एक तटस्थ आदमी तो उनसे यही कहेगा कि भाई, जाने दो इस बातको भूल जाओ । थोड़ा-बहुत दोष तो दोनोंका ही होगा, आगे से आपसमें मिल-जुलकर रहना । इसके बाद वे वकीलके पास जाते है । वकीलका तो यह कर्तव्य ही ठहरा कि अपने मवक्किलका पक्ष ले और उसके लिए ऐसी दलीलें ढूंढ़ निकाले जो उसके दिमागमें कभी आयी ही न हों । वह यह न करे तो समझा जायगा कि उसने अपने पेशेको कलंकित किया । इसलिए वकील आम तौरसे झगड़ेको आगे बढ़ानेकी ही सलाह देगा ।

फिर जो लोग वकील बनते हैं वे कुछ दूसरोंके दुःख दूर करनेके लिए नहीं बनते, बल्कि पैसा कमानेके लिए बनते हैं । वकालत भी पैसा कमानेका एक रास्ता है और वकीलका स्वार्थ झगड़े बढ़ानेमें ही है । यह तो मेरी जानी हुई बात है कि लोग लड़ें-झगड़ें तो वकीलोंको खुशी होती है । मुख्तार भी उसी बिरादरीके— उन्हींके भाई-बंद हैं । जहाँ झगड़ा न हो वहाँ भी वे खड़ा कर देंगे । उनके दलाल

होते हैं जो जोंककी तरह गरीबोंसे चिपकते और उनका खून चूस लेते हैं। यह धंधा ही ऐसा है कि इससे लोगोंको लड़ने-झगड़नेका प्रोत्साहन मिलता है। वकील निठल्ले आदमी होते हैं। आलसी स्वभावके लोग ऐश-आराम करनेकी खातिर वकील बनते हैं। यही सच्ची बात है। जो दूसरी दलीलें दी जाती हैं वे तो महज बहाने हैं। वकालत बहुत प्रतिष्ठित पेशा है, यह खोज करनेवाले भी तो वकील ही हैं। कायदे-कानून वही बनाते हैं, अपनी बड़ाईके गीत भी वही गाते हैं। लोगोंसे मेहनताना कितना लिया जाय इसका फैसला भी वही करते हैं। लोगोंपर रोब जमाने के लिए वे ऐसा आडम्बर रचते हैं मानों देवलोकसे उतरे हुऐ कोई देवता हों!

वे साधारण मजदूरसे बड़ा रोजीना क्यों माँगते है? उनकी जरूरतें मजदूरसे ज्यादा क्यों हों? मजदूरकी तुलनामें उन्होंने देशकी क्या अधिक भलाई कर दी है? फिर भलाई करनेवाला क्या अधिक पैसा पानेका हकदार है? जो काम उन्होंने पैसेके लिए किया वह भलाई कैसे माना जा सकता है?

हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ोंकी जिन्हें कुछ जानकारी है वे जानते हैं कि कितने ही झगड़े वकीलोंके कारण ही हुए हैं। कितने ही बसे घर उनकी बदौलत उजड़ गये। भाई-भाई एक दूसरेके दुश्मन हो गये। कितने ही राजा-रईस उनके जालमें फंसकर कर्जसे लद गये। बहुतेरे सुखी-संपन्न गृहस्थ वकीलोंकी कारसाजीसे भिखारी बन गये। ऐसे बीसियों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पर उनके हाथों देशका जो सबसे बड़ा अपकार हुआ है वह यह है कि अंग्रेज़ोंका जुआ हमारी गरदन पर और कसकर बैठ गया। आप ही सोचिये। अंग्रेज़ी अदालतें न होतीं तो क्या अंग्रेज हमपर राज्य कर सकते? ये अदालतें कुछ लोगोंके भलेके लिए नहीं कायम की गयी हैं। जिसे अपनी हुकूमत कायम

रखनी होती है वह अदालतोंके जरीये ही लोगोंको अपने बसमें करता है। लोग आपसमें ही निबट लें तो तीसरा उनपर अपनी प्रभुता नहीं जमा सकता। सचमुच जब लोग खुद लड़-भिड़ कर या स्वजनोंको पंच बनाकर निपट लेते थे तब वे मर्द होते थे। अदालतें आयीं तबसे वे नामर्द बन गये। आपसमें लड़ मरना तो जंगलीपन माना जाता है, पर मेरे-आपके झगड़ेमें तीसरा पंच बने, यह क्या कम जंगलीपन है? तीसरेका फैसला हमेशा ठीक ही होता है, यह कौन कह सकता है? सच्चा कौन है इसे दोनों पक्षवाले जानते हैं। यह तो हमारा भोलापन है जो हम यह मान लेते हैं कि हमारा पैसा लेकर तीसरा आदमी हमारा इंसाफ करता है।

जो हो, याद रखनेकी बात इतनी ही है कि अंग्रेज़ोंने अदालतोंके जरीये ही हमारे ऊपर कब्ज़ा जमाया है और अदालतें वकीलोंके बिना चल ही नहीं सकतीं। अगर अंग्रेज़ ही जज होते, अंग्रेज़ ही वकील होते, अंग्रेज़ ही सिपाही होते, तो अंग्रेज़ केवल अंग्रेज़ोंपर ही राज करते। हिन्दुस्तानी जजों और हिन्दुस्तानी वकीलोंके बिना उनका काम न चल सका। वकील किस तरह बनाये, किस तरह पोसे-पुचकारे गये, यह सब आप समझ लें तो आपको भी इस पेशेसे उतनी ही नफरत हो जायगी जितनी मुझे है। अंग्रेज़ी राज्यकी एक मुख्य कुञ्जी उसकी अदालतें हैं और अदालतोंकी कुञ्जी वकील हैं। वकील वकालत छोड़ दें और यह पेशा वेश्यावृत्तिके जैसा हीन समझा जाने लगे तो अंग्रेज़ी हुकूमतकी इमारत एक दिनमें ढह जाय। वकीलोंकी बदौलत हम हिन्दुस्तानियोंपर यह लांछन लगाया गया है कि हमें झगड़ा रुचता है और अदालत-कचहरीसे हमें वैसी ही प्रीति है जैसी मछलीको पानीसे।

वकीलोंके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है वह जजोंपर भी चरितार्थ होता है। ये दोनों तो मौसेरे भाई और एक दूसरेका बल बढ़ानेवाले हैं।

: १२ :

हिन्दुस्तानकी हालत--५

डाक्टर

पा०—वकीलोंकी बात तो अब समझमें आने लगी। उनसे हमारी जो भलाई हुई है वह अनायास, संयोगवश ही हुई-सी जान पड़ती है वैसे उनके पेशे को देखें तो वह खराब ही ठहरता है। पर आप तो डाक्टरोंको भी उन्हींके साथ घसीटते हैं, यह कैसे होगा ?

सं०—जो विचार मैं आपके सामने रख रहा हूँ वे इस समय तो मेरे ही हैं, पर वे महज मेरे दिमागकी उपज हों सो बात नहीं है। पश्चिमके सुधारक इन बातोंको अधिक कड़े शब्दोंमें लिख गये हैं। वकील-डाक्टरोंको उन्होंने बुरी तरह कोसा है। एक डाक्टरने तो एक विषवृक्ष बनाया है। वकील-डाक्टर जैसे परोपजीवी पेशे उसकी डालें हैं और उसके तनेपर नीति-धर्म रूपी कुल्हाड़ी आघातके लिये उठी हुई है। अनीति सारे परोपजीवी पेशोंका मूलरूप बतायी गयी है। इससे आप समझ सकते हैं कि मैं आपके सामने अपनी जेबसे निकालकर कोई नये विचार नहीं रख रहा हूँ, बल्कि दूसरोंके और अपने अनुभव आपको बता रहा हूँ।

डाक्टरों के विषयमें जैसे आपको आज भी मोह है वैसे ही कभी मुझे भी था। एक समय था जब खुद मेरे मनमें भी डाक्टर होनेका हौसला था। सोचता

था कि डाक्टर बनकर जनताकी सेवा करूँगा। पर वह मोह नष्ट हो चुका है। हमारे यहाँ वैद्यका धन्धा अच्छे पेशोंमें क्यों नहीं गिना गया, इसका अर्थ अब मेरी समझमें आ गया और अब मैं उस विचारका मूल्य आँक सकता हूँ।

अंग्रेज़ोंने हमपर अपना पंजा कसनेमें डाक्टरी विद्याकी भी सहायता ली है। डाक्टरोंमें दंभकी भी कमी नहीं है। मुगल बादशाहको बहकाने वाला एक अंग्रेज़ डाक्टर ही तो था। उसने उनके घरमें किसीका रोग छुड़ा दिया, इसलिये उसे इनाम मिला। अफगानिस्तानके अमीरके पास पहुँचनेवाला भी डाक्टर ही था।

डाक्टरोंने हमें डावाँडोल कर दिया है। कभी-कभी तो यह कहनेको जी चाहता है कि इन डाक्टरोंसे तो हमारे अताई वैद्य या नीम-हकीम ही भले। डाक्टरों का काम केवल शरीर की सम्हाल है, बल्कि यह भी नहीं, उसमें कोई रोग हो जाय तो उसे दूर कर देना भर है। रोग होता कैसे है? हमारी ही गलती, गफलतसे। मैंने ठूंस-ठूंसकर खा लिया; अपच हुआ; मैं डाक्टरके पास पहुँचा; उसने गोली दी; मैं चंगा हो गया। मैंने फिर ठूंसकर खाया, फिर और गोली खायी। यही ढर्रा चलता रहता है। पहली बार ही दवाई न खाकर मैं अपचकी सजा भुगत लेता तो फिर बेहिसाब न खाता। पर डाक्टर बीच में कूदा और उसने मुझे पेटकी माँगसे अधिक खा लेनेमें मदद दी। इससे मेरे शरीरको तो सुख मिला, पर मन निर्बल हो गया। यों चलते-चलते अन्तमें यह हो जाता है कि मनपर तनिक भी काबू नहीं रह जाता। मैंने विषय-सुख भोगा, बीमार पड़ा, डाक्टरने दवा दी, मैं चंगा हो गया। तो क्या मैं फिर विषय-संभोगका सुख न लूँगा? अवश्य लूँगा। डाक्टर बीचमें न आता तो प्रकृति अपना काम करती, मेरा मन पक्का हो जाता और अन्तमें मैं विषय-वासनासे मुक्त होकर सुखी होता।

अस्पताल तो पापके घर हैं, उनके कारण मनुष्य अपने शरीरकी फिक्र कम

और अनाचार अधिक करता है। यूरोपीय डाक्टरोंने तो हद ही कर दी है। शरीरकी झूठी सम्हालकी खातिर वे हर साल लाखों जीवोंकी हत्या करते हैं, जीवित प्राणियोंपर तरह-तरहकी आजमाइशें करते हैं। कोई भी धर्म ऐसा करनेकी इजाजत नहीं देता। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी धर्म कहते हैं कि मनुष्यके शरीरके लिए इतने प्राणियोंकी जान लेना जरूरी नहीं है।

डाक्टर हमें धर्मभ्रष्ट करते हैं। उनकी ज्यादातर दवाओंमें चरबी या शराब मिली होती है। दोनों ही चीज़ हिन्दू-मुसलमानके छूने लायक नहीं है। हम सभ्य होनेका ढोंगकर, धर्मकृत निषेधोंको अन्धविश्वास मानकर जो जीमें आये वह करते रहें, यह और बात है। पर डाक्टर वैसा करनेके लिए हमें बढ़ावा देते हैं यह सीधी और पक्की बात है। इसका यह फल हुआ कि हम निर्जीव और नामर्द होते जा रहे हैं। ऐसी दशामें हम देशसेवा करने लायक नहीं रहते और हमारा तन-मन क्षीण, बलहीन होता जा रहा है।

हम डाक्टर क्यों होते हैं, यह भी सोचनेकी बात है। इसका सच्चा कारण प्रतिष्ठा और पैसा देने वाला पेशा करना है, परोपकारकी भावना नहीं है। यह तो मैं बतला ही चुका हूँ कि इस धन्धेसे लोकसेवा नहीं होती, बल्कि लोगोंका अपकार होता है। डाक्टर केवल आडम्बर रचकर लोगोंसे मोटी फीस एंठते हैं। पैसाकी दवाका यों रुपया लेते हैं। लोग अपने सहजविश्वासीपन तथा आरोग्य लाभकी आशामें ठगे जाते हैं। यही बात है तो लोकोपकारका ढोंग रचनेवाले इन डाक्टरोंसे हमारे ठगवैद्य ही क्यों न अच्छे समझे जायें ?

: १३ :

सच्ची सभ्यता क्या है?

पा०—आपने रेलको फेल किया, वकीलको कोसा, डाक्टरको दबोचा। मशीन मात्रको आप हानिकार मानेंगे, यह भी देखता ही हूँ। तब सभ्यता कहें किसको?

सं०—इस सवालका जवाब देना कठिन नहीं है। मैं तो मानता हूँ कि हिन्दुस्तानने जिस सभ्यताका नमूना दुनियाके सामने पेश किया है दुनियाकी कोई भी सभ्यता उसका मुकाबला नहीं कर सकती। जो बीज हमारे पुरखोंने बोया उसकी बराबरी कर सकनेवाली कोई चीज मेरे देखनेमें नहीं आयी। रोम मिट्टीमें मिल गया। यूनानका नाम भर रह गया। मिस्रके फरऊनोंकी बादशाही बिदा हो गई। जापान पश्चिमका चेला बन गया। चीनकी कथा तो कहने ही लायक नहीं। पर हिन्दुस्तान ठोकर खाकर गिर गया है, फिर भी अभी उसकी जड़ मजबूत है।

रोम और यूनान आज अवनतिके गढ़ेमें गिरे हुए हैं, फिर भी यूरोपके लोग उन्हींकी पुस्तकोंसे ज्ञान लेते हैं। वे सोचते हैं कि रोम-यूनानने जो गलतियाँ कीं उनसे हम बच जायंगे। जब उनकी ऐसी हीन दशा है, हिन्दुस्तान अपनी जगहपर अचल है। यही उसका गौरव है। हिन्दुस्तानपर यह दोष लगाया जा सकता है कि यहाँ के लोग इतने असभ्य, अज्ञानी और आलसी हैं कि उनसे कोई फेर-फार कराया ही नहीं जा सकता। पर यह आरोप हमारा गुण है, दोष नहीं। अनु-

भवकी कसौटीपर जिस बातको हमने ठीक पाया उसमें फेरफार क्यों करें ! हमें अकल देनेवाले तो बहुतेरे आया-जाया करते हैं, पर हिन्दुस्तान अडिग रहता है। यही उसकी खूबी है, यही उसका लंगर है।

सभ्यता तो आचार-व्यवहारकी वह रीति है जिससे मनुष्य अपने कर्त्तव्योंका पालन करे। कर्तव्य-पालन और नीति-पालन एक ही चीज है। नीति-पालनका अर्थ है अपने मन और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना। यह करते हुए हम अपने आपको पहचानते हैं। यही 'सुधार' यानी सभ्यता है, जो कुछ इसके विरुद्ध है वह 'कुधार'—असभ्यता है।

सभ्यताकी इस व्याख्याके अनुसार तो हिन्दुस्तानको किसी से कुछ सीखना नहीं रहता। वास्तवमें है भी यही बात। अनेक अंग्रेज लेखक भी यह बात लिख गये हैं। हम देख चुके हैं कि मनुष्यकी वृत्तियाँ चंचल हैं। उनका मन यहाँ से वहाँ भटकता रहता है। शरीरका यह हाल है कि उसे जितना दो उतना ही और माँगता है। अधिक पाकर भी सुखी नहीं होता। भोग भोगनेसे भोगकी इच्छा बढ़ती जाती है। इसीसे हमारे पुरखोंने उसकी हद बाँध दी। बहुत सोच-विचारके बाद वे इस नतीजेपर पहुंचे कि सुख-दुखका कारण हमारा मन है। न अमीर अमीर होनेके कारण कोई सुखी होता है और न गरीब गरीब होनेकी वजहसे दुखी होता है। अक्सर अमीर दुखी और गरीब सुखी दिखाई देता है। फिर करोड़ों आदमियोंको तो गरीब ही रहना है। यही देखकर हमारे बुजुर्गोंने हमें भोगकी वासनासे मुक्त करनेकी कोशिश की। हजारों साल पहले जिस हलसे हमने काम लिया उसीसे आजतक काम चलाते रहे। हजारों बरस पहले जैसे झोंपड़ोंमें हमने गुजर किया वैसे ही झोंपड़े अबतक बनाते रहे। पढ़ाई-लिखाईका भी वही हजारों बरस पहलेका ढर्रा चलता रहा। सत्यानाशी प्रतियोगिताको हमने अपने पास फटकने नहीं दिया,

सब अपना-अपना धंधा करते और बंधे हिसाबसे पैसा लेते रहे। हमें नये-नये कल-पुरजे बनाना न आता हो सो बात नहीं थी। पर हमारे पुरखोंने देखा कि मनुष्य यन्त्रोंके जालमें फंसा तो उसका गुलाम ही बन जायगा और नीतिसे हाथ धो बैठेगा। इसलिए उन्होंने सोच-विचार कर कहा कि तुम्हारे हाथ-पाँवसे जितना हो सके उतना ही करो, हाथ-पैरसे काम लेनेमें ही सच्चा सुख और स्वास्थ्य है।

उन्होंने यह भी सोचा कि बड़े-बड़े शहर बसाना बेकारका झंझट है। उनमें रहकर सुखी न होंगे। वहाँ तो चोर डाकुओंके दल जुड़ेंगे, पैसेवाले गरीबोंको चूसेंगे, 'सफेद गलियाँ' आबाद होंगी। अतः उन्होंने छोटे-छोटे गाँवोंसे ही सन्तोष किया। उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी तलवारोंसे नीति-धर्मका बल अधिक बलवान है, इसलिए उन्होंने नीतिवान् पुरुषों, ऋषि, मुनियों और साधु-सन्तोंसे राजाका दरजा छोटा माना। जिस राष्ट्रका विधान ऐसा हो वह दूसरोंको सिखाने-का अधिकारी है, उनसे सीखनेका नहीं।

हमारे यहाँ अदालतें थीं, वकील थे, वैद्य-हकीम थे। पर सबको बंधे नियमों-के अन्दर रहना पड़ता था। सभी जानते थे कि ये धंधे कुछ और धन्धोंसे ऊंचे नहीं हैं। फिर वकील, वैद्य आदि लोगोंको लूटते नहीं थे। ये लोग तो जन-समाजपर आश्रित थे, उसके मालिक बनकर नहीं रहते थे। न्याय प्रायः सच्चा ही होता था। अदालत न जाना ही साधारण नियम था। उन्हें बहकानेके लिए दलाल भी नहीं थे। इन बुराइयोंके दर्शन तो राजदरबारों और राजधानियोंमें ही होते थे। आम लोग तो दूसरे ढंगसे रहते और अपनी खेत-किसानी करते थे। उनके लिए तो सच्चा स्वराज्य था।

यह चांडाल सभ्यता जहाँ नहीं पहुँची है वहाँ आज भी वही हिन्दुस्तान है। वहाँ आप अपने ढोंग-ढकोसलोंकी बात करें तो लोग आपकी हंसी उड़ायेंगे। उन-

पर न अंग्रेज राज्य करते हैं न आप कभी कर सकेंगे। जिन लोगों के नामपर हम बातें करते हैं उन्हें हम नहीं पहचानते और वे हमें नहीं पहचानते। आप या जिनके दिलमें देशका दर्द है उन्हें मैं यह सलाह दूंगा कि पहले आप अपने देशके उस हिस्सेमें जायं जहाँ अभी रेलके चरण नहीं पहुँचे हैं, वहाँ छः महीने फिरें और दिलमें देशका दर्द पैदा करें और स्वराज्यकी बात करें।

अब आपने देख लिया कि सच्ची सभ्यता या सुधार मैं किसे कहता हूँ। ऊपर जो चित्र मैंने खींचा है वैसा हिन्दुस्तान जहाँ हो वहाँ जो लोग फेर-फार करना चाहते हों उन्हें देशका दुश्मन जानिये, वे पापी हैं।

पा०—आपने जैसा बताया है हिन्दुस्तान वैसे ही हो तब तो ठीक ही है। पर जिस देशमें हजारों बाल विधवाएं हैं, जिस देशमें दो-दो बरसके बच्चों की भाँवरें फिरायी जाती हों, जिस देशमें बारह बरसके लड़के-लड़कियाँ पति-पत्नी और माँ-बाप बनते हों, जिस देशमें स्त्री एकाधिक पति करती हो, जिस देशमें नियोगकी प्रथा चलती हो, जिस देशमें धर्मके नामपर कुमारिकाएं वेश्या बनायी जाती हों, जिस देशमें धर्मके नामपर बकरे-पंडवे काटे जाते हों, वह देश भी तो हिन्दुस्तान ही है फिर भी आपने जो कुछ कहा है वह सभ्यताका ही लक्षण है न ?

सं०—आप भूलते हैं। आपने जो दोष बताये हैं वे तो दोष हैं ही। उन्हें कोई हमारी पुरानी सभ्यता नहीं कहता। उस सभ्यताके रहते हुए भी ये दोष दूर करनेके प्रयत्न सदा होते रहे और होते रहेंगे। हमारे अन्दर जो नयी जाग हुई है उसका हम इन दोष-त्रुटियोंको दूर करनेमें उपयोग कर सकते हैं। पर आधुनिक सभ्यताके जो लक्षण मैंने आपको बताये हैं उन्हें उसके हिमायती अपने मुंहसे भी कहते हैं, भारतीय सभ्यताको मैंने जैसा बताया हैं उसके भक्त भी उसे वैसा ही कहते हैं।

किसी भी देश और किसी भी सभ्यतामें सब लोग सम्पूर्णता नहीं प्राप्त कर सके। भारतीय सभ्यताका झुकाव नीतिको दृढ़ करनेकी ओर है, पश्चिमी सभ्यताका अनीतिको दृढ़ करनेकी ओर। पश्चिमकी सभ्यता नास्तिक, निरीश्वरवादी है, भारतकी सभ्यता ईश्वरको माननेवाली है।

हिन्दुस्तानका हित चाहने वालोंको चाहिये कि इस तत्वको समझकर इसमें श्रद्धा रखकर बच्चा जैसे माँकी छातीसे चिपका रहता है वैसे ही अपनी पुरानी सभ्यतासे चिपके रहें।

: १४ :

हिन्दुस्तान कैसे छूटे ?

पा०—सभ्यताके विषयमें आपके विचार समझ लिये। आपने जो कुछ कहा है उसपर मुझे ध्यान देना होगा। सभी बातें एकबारगी मान ली जायं, यह तो नहीं हो सकता। आप ऐसी आशा भी न रखते होंगे। अब यह बताइये कि आपके विचारोंके अनुसार हिन्दुस्तानके छुटकारेका उपाय क्या हो सकता है ?

सं०—सब लोग मेरे विचार एकबारगी स्वीकार कर लेगें, यह आशा तो मैं रखता ही नहीं। मेरा फ़र्ज़ तो इतना ही है कि आप जैसे जो लोग मेरे विचार जानना चाहते हों उनके सामने उन्हें रखदूं। वे विचार उन्हें रुचते हैं या नहीं यह तो समय ही बतलायेगा।

सच पूछिये तो हिन्दुस्तानके छुटकारेके उपायपर हम विचार कर भी चुके। पर वह अप्रत्यक्ष रूपमें हुआ, अब हम प्रत्यक्ष रूपसे उसपर विचार करें।

यह तो सर्वविदित बात है कि जिस कारणसे कोई बीमार हुआ हो उसको दूर करनेसे ही वह अच्छा हो सकता है। वैसे ही जिन कारणोंसे हिन्दुस्तान गुलामीमें फंसा उन्हें दूर करनेसे वह आज़ाद हो सकता है।

पा०—हिन्दुस्तानकी सभ्यता, जैसा कि आप मानते हैं, सर्वश्रेष्ठ है। तब वह गुलामीमें क्यों फंसा ?

सं०—हमारी सभ्यता तो जैसे मैंने बतलायी वैसी ही है, पर सभी सभ्यताओंपर बुरे दिन आया करते हैं। जो सभ्यता अचल, अडिग होती है वह उस संकटसे पार हो जाती है। भारतकी सन्तानोंमें कुछ कचाई थी इस कारण उसकी सभ्यता संकटमें पड़ गयी। पर उसमें इस घेरेको तोड़कर निकल आनेका बल है, यही उसका गौरव है। फिर कुछ सारा हिन्दुस्तान उस घेरेमें फँस गया हो सो बात भी नहीं है। जिन्होंने पश्चिमी ढंगकी शिक्षा पायी है और जो उसके जालमें आ चुके हैं वही गुलामीमें फंसे। दुनियाको हम अपने बालिश्त भरके पैमाने से ही नापते हैं। हम गुलाम हैं तो हम सारी दुनियाको वैसा ही मानते हैं। हम कंगाल हों तो मान लेते हैं कि सारे हिन्दुस्तानकी यही दशा है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। फिर भी अपनी गुलामीको देशकी गुलामी मानना ठीक ही है। पर हम ऊपर कही हुई बातको ध्यानमें रखें तो यह समझ सकते हैं कि हमारी अपनी गुलामी चली जाय तो हिन्दुतानकी गुलामी भी गयी हुई समझी जायगी। इस विचारमें आपको स्वराज्यकी व्याख्या मिल जायगी। अपने ऊपर अपना राज्य हो यही तो स्वराज्य है, और यह स्वराज्य तो अपने हाथ में ही है।

इस स्वराज्यको आप सपना न समझें। मनमें स्वराज्य मानकर बैठ रहना स्वराज्य नहीं है। यह तो ऐसी चीज है कि एक बार उसका स्वाद चख लेनेके बाद आप दूसरोंको उसका आस्वादन करानेके लिए यावज्जीवन यत्न करते रहेंगे। पर मुख्य बात यह है कि यह स्वराज्य हर आदमीको स्वयं भोगना होगा। जो खुद डूब रहा हो वह दूसरेको क्या बचायेगा, तरनेवाला ही दूसरेको तार सकता है। हम खुद गुलाम रहते हुए दूसरोंको गुलामीसे छुड़ानेकी बात करें तो यह होनेवाली बात नहीं।

पर इतना ही काफी नहीं है। अभी इस विषयमें हमें और विचार करना होगा।

आपने इतना तो समझ ही लिया होगा कि अंग्रेज़ोंको निकाल बाहर कर देना हम अपना लक्ष्य बनायें, यह ज़रूरी नहीं है। अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी बनकर रहें तो हम उन्हें अपनेमें मिला ले सकते हैं। हाँ, अगर वे सभ्यताके साथ यहाँ रहना चाहें तो हिन्दुस्तानमें उनके लिए जगह नहीं है। ऐसी स्थिति पैदा कर देना हमारे हाथमें है।

पा०—आप कहते हैं कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी बन जायें। यह तो अनहोनी-सी बात है।

सं०—यह कहना तो यह कहने जैसा है कि अंग्रेज़ आदमी नहीं हैं। और वे हम जैसे बनेंगे या नहीं इसकी चिन्ता ही हमें क्यों हो ? हमें अपने घरकी सफ़ाई करनी चाहिए। फिर जो लोग उसमें रहने लायक होंगे वही रहेंगे, दूसरे अपने-आप रास्ता लेंगे। यह अनुभव तो हर आदमीको हो चुका होगा।

पा०—इतिहासमें तो ऐसा होनेकी बात कहीं देखनेमें नहीं आयी।

सं०—जो इतिहासमें नहीं है वह हो ही नहीं सकता, यह मानना तो मनुष्यको हीन पद देना है। जो बात अपनी बुद्धिमें आती है उसे आजमाकर देखना चाहिए ही। हर देशकी दशा एक-सी नहीं होती। हिन्दुस्तानकी स्थिति विचित्र है। उसका बल अतुल है इसलिये दूसरे देशों के इतिहासोंसे हमारा थोड़ा ही लगाव है। यह मैं आपको बता ही चुका हूँ कि दूसरी सभ्यताएँ कब्रमें सो गयीं पर भारतकी सभ्यताको आँच न आयी।

पा०—मुझे ये सारी बातें ठीक नहीं लगतीं। इस बातमें तो शककी बहुत ही कम गुंजाइश है कि हमें अंग्रेज़ोंको लड़कर यहाँसे निकालना ही होगा। जबतक वे इस देशमें बने हैं तबतक हमें चैन नहीं मिलनेका। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' की सचाई प्रत्यक्ष है। अंग्रेज़ों के यहाँ रहनेसे हम दिन-दिन दुर्बल होते जा रहे

हैं। हमारा तेज नष्ट हो गया है और हमारे देशके लोग डरे-घबराये हुये-से दिखाई दे रहे हैं। अंग्रेज़ हमारे देशके लिए कालरूप हैं। उस कालको जसे भी हो हमें यहाँसे बिदा करना ही होगा।

सं०—मेरी कही हुई सभी बातें आप आवेशमें भूल गये। हमीं तो अंग्रेज़ोंको यहाँ लाये और उन्हें टिकाये हुए हैं। आप इस बातको क्यों भूल जाते हैं कि हमने उनकी सभ्यताको अपना लिया इसीसे वे यहाँ रह सकते हैं। आपको उनसे जो नफरत है वह उनकी सभ्यतासे होनी चाहिए। फिर भी थोड़ी देरके लिए हम मान लें कि हमें लड़कर उन्हें यहाँसे निकालना है। पर यह होगा कैसे?

पा०—वैसे ही जैसे इटलीने किया। मेजिनी (मात्सिनी) और गेरिबाल्डी (गारिबाल्दी) ने जो किया वह हम भी कर सकते हैं। वे महावीर, महापुरुष थे, इससे तो आप इन्कार कर नहीं सकते।

: १५ :

इटली और हिन्दुस्तान

सं०—आपने इटलीकी मिसाल खूब दी। मेजिनी महात्मा था, गेरिबाल्डी भारी योद्धा था। दोनों पूजनीय थे, उनके चरितसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। पर इटलीकी दशासे भारतकी दशा भिन्न है।

पहले तो मेजिनी और गेरिबाल्डीमें जो भेद था वह जान लेनेकी चीज है। मेजिनीका मनोरथ कुछ और था। वह जो चाहता था वह इटलीमें नहीं हुआ। मनुष्य के कर्त्तव्योंपर लिखते हुए उसने कहा कि हर एक आदमीको स्वराज्य भोगना चाहिए—अपने ऊपर राज्य करना चाहिये। यह उसका सपना ही रहा। मेजिनी और गेरिबाल्डी का मतभेद याद रखनेकी चीज है। गेरिबाल्डीने हर एक इटालियनको हथियार दिये और हर एक इटालियनने हथियार बांधे।

इटली और आस्ट्रियामें सभ्यताका भेद न था। इस विषयमें तो वे एक दूसरेके चचेरे या मौसेरे भाई थे। इटलीकी बात तो 'जैसेको तैसा' जैसी थी। गेरिबाल्डीका मोह केवल यह था कि इटलीको किसी तरह आस्ट्रियाके पंजेसे छुड़ाएं। इसके लिए उसने कावूर के जरीये जो कुचक्र रचे वे उसकी वीरताको दाग लगाने वाले हैं। और अन्तमें इसका नतीजा क्या रहा? अगर आप यह मानते हैं कि इटलीमें इटलीवालोंका राज्य है इसलिए इटलीकी जनता सुखी है तो मुझे

आपको बता देना चाहिये कि आप अंधेरेमें भटक रहे हैं। मेजिनीने अपनी पुस्तकोंमें असंदिग्ध रूपमें दिखा दिया है कि इटलीकी बेड़ियाँ नहीं कटीं। इटलीका विक्टर इमेन्युअलने एक अर्थ किया, मेजिनीने दूसरा। इमेन्युअल, कावूर और गेरिबाल्डीके मतानुसार इटलीका अर्थ था इमेन्युअल अर्थात् इटलीका राजा और उसके दरबारी। मेजिनीके विचारसे इटलीकी जनता—उसका कृषक वर्ग ही—इटली था। इमेन्युअल आदि तो महज उसके नौकर थे। मेजिनीका इटली आज भी गुलाम है। जिसे राष्ट्रीय संग्राम कहते हैं वह दो बादशाहोंके बीच होनेवाली शतरंजकी बाजी थी। इटलीके लोग तो महज उसके प्यादे थे। इटली के मज़दूर आज भी दुःखी हैं। उनकी फरियाद सुननेवाला कोई नहीं। इसलिए वे लोग कतल करते हैं, बगावत करते हैं। तब आस्ट्रियन सेनाके चले जानेसे इटलीका क्या लाभ हुआ? लाभ नामका ही हुआ। जिन सुधारोंके नामपर संग्राम हुआ वे सुधार नहीं हुए, जनताकी दशा नहीं सुधरी।

हिन्दुस्तानका हाल यही हो जाय यह इच्छा तो आपकी होगी ही नहीं। मैं तो मानता हूँ कि आपका विचार तो हिन्दुस्तानके करोड़ों जनोंको सुखी बनानेका है, न कि राजशक्ति अपने हाथमें लेनेका। यह बात है तो हमें एक ही बात सोचनी पड़ेगी—हिन्दुस्तानके लोग कैसे आज़ाद हो सकते हैं?

यह तो आप मानेंगे ही कि कितने ही देशी राज्योंमें प्रजा बुरी तरह कुचली, दबायी जाती है। लोग निर्दयताके साथ सताये जाते हैं। राजाओंका जुल्म अंग्रेज़ोंसे बढ़ा हुआ है। ऐसा जुल्म आप हिन्दुस्तानमें भी चाहते हों तब तो मेरा आपका मेल कभी बैठनेका नहीं। मेरी देशभक्ति मुझे यह नहीं सिखाती कि अंग्रेज यहाँसे चले जायँ तो मैं देशी राज्योंकी प्रजापर ऐसा ही जुल्म होने दूं। मुझमें दम होगा तो मैं भारतीय नरेशोंके जुल्मका वैसा ही विरोध करूँगा जैसा अंग्रेज़ोंके

जुल्मका करूँगा। देशभक्तिका अर्थ मैं तो देशकी भलाई समझता हूँ और अंग्रेजोंके हाथों उसका हित होता हो तो मैं उनके आगे मत्था टेकनेको तैयार हूँ। जो अंग्रेज कहे कि मैं हिन्दुस्तानको आज़ाद करूँगा, जनता की सेवा करूँगा, उस अंग्रेजको हिन्दुस्तानीकी तरह ही गले लगाऊंगा।

फिर हिन्दुस्तान इटलीकी तरह तभी लड़ सकता है जब उसके पास भी हरबा-हथियार हों। जान पड़ता है, इस पहाड़ खोदने जैसे कामका आपने विचार ही नहीं किया। अंग्रेजोंके पास गोला-बारूदका भंडार भरा है, इससे तो मुझे डर नहीं लगता। पर यह तो साफ ही है कि उन्हींके हथियारोंसे उनका सामना करना हो तो हिन्दुस्तानको हथियारबन्द बनाना ही होगा। यह मुमकिन हो तो इसके लिए कितने बरस दरकार हैं? फिर सभी हिन्दुस्तानियोंसे हथियार बँधवानेका अर्थ तो हिन्दुस्तानको यूरोपकी नकल बना देना होगा। ऐसा हुआ तो जो दुर्दशा आज यूरोपकी है वही हिन्दुस्तानकी भी होगी। थोड़ेमें इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दुस्तान यूरोपकी सभ्यताको अपना ले। यही होना हो तब तो यही अच्छा है कि जो लोग उस सभ्यतामें कुशल हैं वही यहाँ बने रहें। हम उन्हींसे थोड़ा लड़-झगड़कर थोड़ा-बहुत हक हासिल कर लेंगे और दिन बितायेंगे।

पर सच्ची बात यह है कि हिन्दुस्तानकी जनता कभी हथियार न बाँधेगी, और न बाँधे यही ठीक भी है।

पा०—आप तो बहुत आगे बढ़ गये। सबके हथियार बाँधनेकी ज़रूरत ही नहीं है। पहले तो हम कुछ अंग्रेज़ोंकी हत्या कर आतंक उत्पन्न करेंगे। फिर जो थोड़ेसे आदमी हथियारबन्द हो चुके होंगे वे खुली लड़ाई करेंगे। इसमें पहले तो हमारे २०-२५ लाख आदमी ज़रूर मरेंगे। पर अन्तमें हमारा देश हमारे हाथमें आ जायगा। हम 'गेरिलायुद्ध' (छापा मारने की लड़ाई) करेंगे और अंग्रेजोंको हरा देंगे।

सं०—आपका विचार तो भारतकी पवित्र भूमिको राक्षसोंका देश बना देनेका-सा जान पड़ता है। हत्याएं करके हिन्दुस्तानको आज़ाद करनेकी बात सोचते हुए आपका कलेजा काँपता नहीं? खून तो हमें अपना ही करना चाहिए। हम नामर्द हो गये हैं इसीसे दूसरोंको कतल करनेकी बात सोचते हैं, और ऐसे काम करके आप किसे आजाद करेंगे? हिन्दुस्तानकी जनता तो ऐसा कभी नहीं चाहती। आप जैसे लोग ही, जिन्होंने इस अधम आधुनिक सभ्यताकी भाँग पी ली है, ऐसे विचारोंके चक्करमें रहते हैं। खून-खराबीसे जो स्वराज्य मिलेगा वह राष्ट्रको सुखी नहीं कर सकता। जो लोग समझते हैं कि धींगरा* द्वारा की गयी हत्या और हिन्दुस्तानमें हुए हत्याकाण्डोंसे देशका लाभ हुआ है वे भारी भूल करते हैं। धींगराको मैं देशभक्त मानता हूँ, पर उसकी देशभक्ति अँधी थी। उसने गलत रास्तेसे अपने शरीरकी बलि चढ़ायी। इससे अन्तमें वह हानिकर ही होगी।

पा०—पर आपको इतना तो मानना ही होगा कि अंग्रेज़ इन हत्याओंसे डर गये हैं, और लार्ड मारलेने जो कुछ दिया है वह इसी डरसे दिया है।

सं०—अंग्रेज़ डरपोक हैं तो बहादुर भी हैं। यह मैं मानता हूँ कि उनपर गोला-बारूदका असर तुरन्त होता है। हो सकता है कि लार्ड मारलेने जो सुधार दिये हैं वे डरसे ही दिये गये हों। पर डरसे मिली हुई चीज़ तभीतक रहती है जब तक वह डर बना रहे।

---

* पंजाबी युवक मदनलाल धींगराने जुलाई १९०९ में लन्दनमें कर्नल सर कर्जन वाइलीको गोली का निशाना बनाया था। १६ अगस्तको उसे फाँसीकी सजा मिली।

: १६ :

शस्त्र-बल

पा०—यह तो आप कुछ विचित्र-सी बात कह रहे हैं कि डरसे मिली हुई चीज़ तभीतक टिक सकती है जबतक डर बना हो। मिला सो मिला, उसमें फिर क्या फेरफार हो सकता है?

सं०—ऐसी बात नहीं है। १८५८ की घोषणा गदरके बाद लोकशान्तिके लिए की गई थी। जब शान्ति होगयी तब उसका अर्थ बदल गया। अगर मैं सज़ाके डरसे चोरी नहीं करता तो जब सजाका डर न रहेगा तब फिर मेरा मन चोरी करनेका होगा, और मैं चोरी करूँगा। यह तो बिलकुल आम अनुभव है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। हमने यह जान रखा है कि डरा-धमकाकर लोगोंसे काम लिया जा सकता है। इसीसे हम ऐसा करते आये हैं।

पा०—क्या आपको यह नहीं दिखाई देता कि यह कहकर आप अपनी ही बातका खण्डन कर रहे हैं? यह तो आपको कबूल करना ही होगा कि अंग्रेज़ोंने खुद भी अपने देशमें जो कुछ प्राप्त किया है वह मार-काट मचानेसे ही मिला है। आप यह कह चुके हैं कि जो कुछ उन्हें मिला वह निकम्मा है। यह बात मुझे याद है। पर इससे मेरी दलील नहीं कटती। उन्होंने बेकार चीजें लेना चाहा, उन्हें वे मिलीं। कहनेका मतलब यह है कि उन्हींकी कामना फली, वह जो चाहते

थे वही उन्हें मिला। किन साधनोंसे उन्होंने उसे प्राप्त किया इसकी चिन्ता क्यों की जाय? हमारा उद्देश्य अच्छा हो तो किसी भी साधनसे, मार-काट करके भी, उसे क्यों न प्राप्त करें? मेरे घरमें चोर घुस आये तो उस वक्त क्या मैं साधनोंका विचार करूँगा? उस वक्त तो मेरा धर्म यही होगा कि जैसे भी बने उसको घरसे बाहर करूँ।

जान पड़ता है, इस बातको तो आप भी मानते हैं कि अर्जी-प्रार्थनासे हमें न कुछ मिला है, न मिलेगा। तब मारकर क्यों न लें? जो कुछ मिलेगा उसे अपने कब्जेमें रखनेके लिए मार-पीटका डर, जितना जरूरी होगा, सदा बनाये रखेंगे। बच्चा आगमें पाँव डालता हो तो उसे इससे रोकनेके लिए हम जोर-दबावसे काम लेते रहें, इसमें तो आप भी दोष न मानते होंगे। हमें तो जैसे भी हो अपना कार्य सिद्ध करना है।

सं०—आपकी दलील सुननेमें तो ठीक लगती है, पर वह बहुतोंको ठग चुकी है। पहले मैं भी ऐसी दलीलें दिया करता था। पर अब मेरी आँखें खुल गई हैं और मैं अपनी भूलको देख सकता हूँ। आपको भी उसे दिखानेकी कोशिश करूँगा।

पहले इस बातको ही लें कि अंग्रेजोंने जो कुछ पाया वह मार-काटसे ही पाया है इसलिए हमें भी वही करके अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये। यह बात तो सही है कि अंग्रेजोंने मार-काट की, और हम भी कर सकते हैं। पर उससे जो चीज उन्हें मिली वही हम भी पा सकते हैं। और यह तो आप कबूल करेंगे ही कि हमें वह नहीं चाहिए।

आप साधन और साध्यमें कोई लगाव नहीं मानते, यह बहुत बड़ी भूल है। इसी भ्रममें पड़कर, धर्मिष्ठ समझे जानेवाले मनुष्योंने भी घोर कर्म किये हैं। यह

तो बबूल बोकर आम खानेकी इच्छा रखने जैसा है। मुझे समुद्र पार करना हो तो इसके लिए मुझे जहाजका ही सहारा लेना होगा। बैलगाड़ीको पानीमें उतारूँ तो गाड़ी और मैं दोनोंको जलसमाधि मिलेगी। जैसे देवता वैसी पूजाकी कहावत विचारने योग्य बात है। साधन बीज है, साध्य वृक्ष। अतः जो सम्बन्ध बीज वृक्षमें है वही साधन और साध्यमें भी है। शैतानको भजकर मैं ईश्वर-भजनका फल पाना चाहूँ तो यह होनेवाली बात नहीं। इसलिए कोई यह कहे कि मुझे तो भगवान्‌को भजना है, इसका साधन भले ही शैतानका हो, तो यह उसका निरा अज्ञान होगा। "जैसी करनी वैसी भरनी, तैसी पार उतरनी।" अंग्रेज़ोंने दंगा-फसाद करके १८३३ ई० में वोटका हक पहलेसे बढ़वा लिया, पर मार-पीटसे काम लेकर क्या वे अपने कर्तव्यको कुछ अधिक समझ सके? वे वोटका अधिकार चाहते थे, वह मार-झगड़ेसे मिल गया। पर सच्चा अधिकार तो कर्तव्य-पालनका फल होता है, वह उन्हें नहीं मिला। नतीजा यह हुआ कि आज सभी हकके लिए हाय-तोबा मचा रहे हैं, फर्ज की किसीको याद ही नहीं आती। और जहाँ सभी हक-हककी रट लगा रहे हों वहाँ कौन किसको दे? मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि वे किसी भी कर्तव्यका पालन करते ही नहीं। मेरा कहना इतना ही है कि जो अधिकार वे चाहते थे उनके साथ लगे हुए कर्तव्योंका पालन उन्होंने नहीं किया। उन अधिकारोंकी योग्यता उन्होंने नहीं प्राप्त की, इसलिए उनके अधिकार उनकी गरदनपरका जुआ बन रहे हैं। अर्थात् उन्होंने जो कुछ पाया वह उनके साधनोंका ही फल है। उन्हें जो चाहिए था उसके अनुरूप ही साधनोंसे उन्होंने काम लिया।

मुझे आपकी घड़ी आपसे छीन लेनी हो तो निश्चय ही मुझे आपके साथ लड़ाई करनी होगी। पर मैं उसे खरीदना चाहूँ तो मुझे आपको उसके दाम देने होंगे। और अगर मुझे बख्शिश या दान के रूपमें उसे प्राप्त करना हो तो मुझे आपसे

आजिज़ी करनी होगी। घड़ीको पाने के लिए मैं जो साधन काममें लाऊँ उसीके अनुसार वह चोरीका माल, मेरी अपनी चीज या दानमें प्राप्त वस्तु होगी। तीन साधनोंके तीन अलग-अलग फल हुए। तब आप कैसे कह सकते हैं कि साधनकी परवाह हमें नहीं करनी चाहिए?

अब चोरको निकाल बाहर करनेकी मिसालको लें। मैं आपके इस विचारसे सहमत नहीं हूँ कि चोरको निकालनेके लिए हम चाहे जिस साधनसे काम ले सकते हैं। मेरा बाप मेरे घरमें चोरी करने आये तो मैं एक साधनसे काम लूँगा। कोई जान-पहचान वाला आये तो उस साधनको काममें न लाऊँगा, और अगर चोर कोई बिलकुल अजनबी आदमी हुआ तो तीसरा साधन काममें लाऊँगा। आप शायद यह भी कहें कि अगर वह यूरोपियन हो तो एक साधन काममें लाया जायगा, हिन्दुस्तानी हो तो दूसरा। फिर अगर कोई मरियल छोकरा चोरी करने आया होगा तो हम जुदा साधन व्यवहार करेंगे और कोई अपनी बराबरी वाला होगा तो जुदा। और अगर कहीं वह हथियारबन्द और बलवान हुआ तब तो मैं दम खींच कर पड़ा ही रहूँगा। इस तरह बापसे लगाकर बली चोरतकके बीच हम भिन्न-भिन्न साधनोंसे काम लेंगे। मैं सोचता हूँ कि चोर मेरा बाप हो तो भी मैं सोया रहूँगा और वह हरबा-हथियार बाँधे बलवान व्यक्ति हो तब भी। बल बापमें भी है और हथियारबन्द आदमीमें भी। दोनों बलसे हार मानकर मैं अपनी चीजको चले जाने दूंगा। बापके बलसे मैं उसपर तरस खाकर रोऊँगा। शस्त्रधारीका बल मेरे मनमें रोष जगायेगा और हम एकदूसरेके कट्टर दुश्मन हो जायँगे। ऐसी विषम स्थिति है। इन उदाहरणोंसे शायद हम साधनके विषयमें एकमत न हो सकें। मुझे तो इन सभी चोरोंके विषयमें अपना कर्तव्य साफ दिखाई दे रहा है। पर मुमकिन है, इस इलाजसे आप चौंकें, इसलिए इसे आपके सामने नहीं रखता। आप उसे

समझ सकते हैं और न समझें तब भी इतना तो स्पष्ट है कि हर मामलेमें आपको जुदे साधनसे काम लेना होगा। यह तो आपने देख ही लिया कि चोर को निकालने के लिए चाहे जो साधन काममें नहीं लाया जा सकता। जैसी स्थिति होगी वैसे साधन से काम लेना होगा और जैसा साधन होगा उसीके अनुरूप फल भी होगा। आपका धर्म चोरको जैसे भी बने निकाल बाहर करना नहीं है।

थोड़ा आगे बढ़िये। वह हथियारबन्द आदमी आपकी चीज चुरा ले गया। आपके मनमें इसकी याद बनी है और उस आदमीपर गुस्सा है। आप सोचते हैं कि अपने लिए नहीं दुनियाकी भलाईके लिए उस दुष्टको दण्ड देना ही चाहिए। आपने कुछ आदमी इकट्ठा किये और उसके घरपर चढ़ गये। उसे खबर मिल गई और वह घरसे भाग गया। अब उसे भी गुस्सा आया। उसने दूसरे लुटेरोंको इकट्ठा किया और दिन-दहाड़े आपका घर लूट लेनेकी धमकी दी। आप बलवान हैं इससे डरते नहीं और अपनी तैयारीमें लग जाते हैं। इस बीच लुटेरे आपके पड़ोसियोंको सताते हैं। वे आपसे शिकायत करते हैं। आप कहते हैं—"मैं आप लोगोंके लिए ही तो यह सब कर रहा हूँ। मेरा माल जो गया उसकी तो कुछ बिसात न थी।" पड़ोसी कहते हैं—"पहले तो वह हमें नहीं लूटता था, आपने उसके साथ लड़ाई शुरू की तभीसे उसने यह उपद्रव आरम्भ किया है।" अब आपकी गति साँप-छछूँदरकी-सी हो गई। गरीबोंपर आपको दया है। उनकी बात भी सच्ची है। तब किया क्या जाय? लुटेरोंको छोड़ दें? इसमें तो आपकी नाक कटती है और प्रतिष्ठा सभीको प्यारी होती है अतः आप उन गरीबोंसे कहते हैं—"कुछ परवाह नहीं। भाइयो, मेरा धन आपका ही तो है, मैं आप लोगोंको हथियार देता हूँ और उन्हें चलाना सिखाता हूँ। उनसे आप उस बदमाशको मारें, छोड़ें हर्गिज नहीं। यों लड़ाई बढ़ी; लुटेरे बढ़े; लोगोंने एक मुसीबत मोल

ले ली। चोरसे बदला लेनेका फल यह हुआ कि रोजा बख्शवाने गये, नमाज गले पड़ी। जहाँ शान्ति थी वहाँ अशान्ति हो गई, पहले त मौत आनेपर ही मरते थे, अब मौत सदा सिरपर नाचने लगी। हिम्मतवाले हिम्मत हार देनेवाले हो गये। आप धीरजके साथ इस दृष्टान्त पर विचार करें तो देखेंगे कि मैंने इसमें कोई बात बढ़ाकर नहीं कही है।

यह हुआ एक साधन। अब दूसरेपर विचार करें। चोरको आपने अज्ञानी समझा और सोचा कि कभी मौका मिला तो उसे समझाऊंगा। आखिर वह भी तो आदमी ही है। उसने किसलिए चोरी की इसका मुझे क्या पता! इसलिए अच्छा रास्ता यही है कि जब वक्त आये तब उसके भीतरसे चोरका बीज ही दूर कर दूँ। आपके मनमें यह मंथन चल ही रहा था कि इतनेमें वह भाई साहब फिर चोरी करने पहुँचे। पर आपको उसपर गुस्सा न आया बल्कि उसपर दया आयी। आपने सोचा यह आदमी तो रोगी है—चोरी की लत इसका मर्ज है। अतः सब खिड़की दरवाजे खोल दिये, अपने सोने की जगह बदल दी और चीज-वस्तु को इस तरह बिखेर दिया कि वह झट उठा ले जाय। चोर आया और यह नयी बात देखकर उलझनमें पड़ गया। माल तो वह ले गया, पर उसके अन्तरमें मन्थन चलने लगा। उसने गाँवमें आपके बारेमें पूछताछ की। उसे आपकी दयालुताका पता लगा। उसे अपनी करनीपर पछतावा हुआ। उसने आपके पास आकर माफी माँगी, आपकी चीजें लौटा दीं और चोरीका पेशा छोड़ दिया। वह आपका सेवक बन गया और आपने उसे किसी अच्छे धन्धे में लगा दिया। यह दूसरा साधन है।

इस तरह आप देख रहे हैं कि विभिन्न साधनोंका फल एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न होता है। इस मिसालसे मैं यह साबित करना नहीं चाहता कि सभी चोर

ऐसा ही करेंगे या सबमें आपके जैसा ही दयाभाव होगा। मैं तो इतना ही दिखाना चाहता हूँ कि अच्छे फल पानेके लिए अच्छे ही साधन होने चाहिए। और सदा नहीं तो अधिकांश अवस्थाओंमें दया और प्रेमका बल शस्त्र-बलसे अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। हथियार उठानेमें तो हानि है, पर दया करनेमें कभी कोई हानि नहीं होती।

अब अरजी-प्रार्थनाकी बात लीजिये। यह बात पक्की है कि जिस अर्जीके पीछे कोई बल न हो वह बेकार है। फिर भी स्वर्गीय जस्टिस रानडे कहा करते थे कि अर्जियाँ लोकशिक्षाका साधन हैं। उनसे लोगोंको अपनी स्थितिका ज्ञान होता है और शासकोंको चेतावनी मिलती है। इस दृष्टिसे देखें तो अर्जी-प्रार्थना बिलकुल बेकार चीज नहीं है। बराबरीका आदमी प्रार्थनापत्र भेजे तो वह उसकी विनय की और कोई गुलाम भेजे तो उसकी गुलामी की निशानी है। अर्जीके पीछे बल हो तो यह बराबरवाले की दर्ख्वास्त है और अपनी माँगको प्रार्थनाके रूपमें पेश करना उसकी कुलीनताका प्रमाण है।

प्रार्थनाके पीछे दो तरहका बल होता है। एक तो यह कि 'न दोगे तो तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।' यह गोले-बारूदका बल है। इसके कुपरिणाम हम गिना चुके। दूसरा बल यह है कि आप हमारी अर्जी मंजूर न करेंगे तो हम आपके अर्जदार न रहेंगे। आप हमारे बादशाह् तभीतक होंगे जबतक हम आपके अर्जदार बने हों। अब आपसे हमारा कोई वास्ता न होगा। इस बलको आप प्रेमबल या सत्याग्रह कह सकते हैं। यह बल अविनाशी है और जो आदमी इस बलसे काम लेता है उसे अपनी स्थितिका पूरा पता होता है। हमारे पुरखोंने ठीक ही कहा है कि "एकता सौ रोगोंकी दवा है।" यह 'ना' करनेका बल जिसके पास है हथियारका बल उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

आगमें पाँव डालनेवाले बच्चे को रोकनेकी मिसाल तो ऐसी है कि उसपर विचार किया जाय तो आपको हार मान लेनी होगी। आप बच्चेको किस तरह रोकेंगे ? मान लीजिये, वह इतना जोर लगा सकता है कि आपको हराकर आगमें गिर जाय, आगमें कूदनेसे रोका ही नहीं जा सकता। अब आपके लिए दो ही रास्ते रह जाते हैं—या तो आगमें कूदनेसे रोकनेके लिए आप उसकी जान ले लें, या उसे आगमें गिरते आप नहीं देख सकते इसलिए अपनी जान दे दें। बच्चेके प्राण तो आप ले ही नहीं सकते। हाँ, यह हो सकता है कि आपमें दयाभाव पूरा न हुआ तो आप अपनी जान भी न दें। तब आप लाचार होकर बच्चेको आगमें जाने देंगे। इस तरह आप बच्चेपर हथियार नहीं उठाते। आप बच्चे को दूसरी तरह रोक सकते हों तो रोकें। पर यह न मान लें कि तब भी वह हथियारका ही बल है, जो कुछ हलकी किस्मका है। यह बल तो दूसरे ही प्रकारका है, और उसे समझना अभी बाकी है।

फिर बच्चेको रोकनेमें आप केवल बच्चेके हितका विचार करते हैं। जिसपर आप अंकुश रखना चाहते हैं उसीके भलेके लिए रखेंगे। यह मिसाल अंग्रेज़ोंपर नहीं लगती, अंग्रेज़ोंके खिलाफ हथियार उठानेमें तो आप अपना ही अर्थात् अपने राष्ट्रका हित देखते हैं। उसमें दया या प्रेमकी छुआई भी नहीं है। अगर आप यह कहें कि अंग्रेज़ बुरा कर्म करते हैं, इसलिए वे आग हैं और वे आगमें अज्ञानवश गिरते हैं, मैं दयासे प्रेरित होकर अज्ञानी अर्थात् बच्चेको बचाना चाहता हूँ, तो फिर जहाँ कहीं कोई बुरा काम करता हो वहाँ आपको यह उपाय आजमानेके लिए पहुँचना और विरोधी बच्चेकी जान लेने के बदले अपनी जान देनी होगी। इतना पुरुषार्थ करनेकी हिम्मत रखते हों तो आप खुदमुख्तार हैं। पर है यह अन-होनी बात।

: १७ :

सत्याग्रह या आत्मबल

पा०—आप जिस सत्याग्रह या आत्मबलकी बात कहते हैं उसकी सफलता-का कोई ऐतिहासिक प्रमाण भी है ? एक भी राष्ट्र इस बलसे ऊपर उठा हो, यह बात आजतक देखनेमें नहीं आयी। मुझे तो आज भी ऐसा लगता है कि दुष्टजन मारके उपचारके बिना सीधे नहीं रह सकते।

सं०—गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

दया धर्म का मूल है, पाप-मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये जबतक घटमें प्रान॥

मुझे तो यह पद शास्त्रवचन-सा जान पड़ता है। दो और दोके मिलकर चार होनेपर मुझे जितना विश्वास है उतना ही विश्वास इस दोहेके सत्य होनेपर भी है। दया अथवा प्रेमका बल ही आत्मबल है, वही सत्याग्रह है और इस बल-का प्रमाण तो हमें पग-पगपर मिलता है। यह बल न होता तो धरती कबकी रसातल पहुँच गयी होती। पर आप तो इतिहासका प्रमाण माँगते हैं, इसलिए पहले हमें यही जान लेना होगा कि इतिहास कहते किसे हैं ?

इतिहासका शब्दार्थ तो है—'ऐसा हुआ' (इति + ह + आस)। इतिहास का आप यह अर्थ करें तब तो आपको सत्याग्रहके पचासों प्रमाण दिये जा सकते

हैं। पर अगर वह अंग्रेज़ी शब्द 'हिस्ट्री'का, जिसका अर्थ 'बादशाहोंकी तवारीख है' उलथा है, तो उसमें सत्याग्रहका प्रमाण नहीं मिल सकता। जस्तकी खानमें आप चाँदी ढूढ़ें तो कैसे मिलेगी? 'हिस्ट्री' में दुनियाके हंगामों की ही कहानी मिलेगी। इसीसे अंग्रेज़ोंमें यह कहावत है कि जिस राष्ट्रकी 'हिस्ट्री' नहीं है—अर्थात् जहाँ हंगामे नहीं हुए—वह राष्ट्र सुखी है। 'हिस्ट्री'में तो यही मिलेगा कि राजा कैसे खेलते, कैसे खून-कतल करते और कैसे वैर पालते हैं। अगर यही इतिहास हो, दुनियामें इतना ही हुआ होता, तब तो दुनिया कब की डूब गयी होती। दुनियाकी कहानी अगर युद्धसे ही आरंभ हुई होती तो अबतक एक भी आदमी ज़िन्दा न होता। जिन जातियोंने युद्धको ही जीवनका धर्म माना उनकी यही गति हुई है। आस्ट्रेलियाके हबशियोंका नाश ही हो गया। आस्ट्रेलियापर दखल जमानेवाले गोरोंने उनमेंसे शायद ही किसी को जिंदा छोड़ा हो। याद रहे कि जिन लोगोंकी जड़ इस तरह उखड़ गयी वे सत्याग्रही न थे। जो जिन्दा रहेंगे वे देखेंगे कि आस्ट्रेलियाके गोरोंकी भी एक दिन यही गति होगी। अंग्रेज़ोंमें यह कहावत है कि "तलवार पकड़नेवालेकी मौत तलवारसे ही होती है।" हमारे यहां भी यह कहावत बन गयी है कि "तैराककी मौत पानीमें ही आती है।"

दुनिया में आज भी जो इतने अधिक मनुष्य विद्यमान हैं यह तथ्य ही हमें बताता है कि विश्वका विधान शस्त्र-बलपर नहीं, बल्कि सत्य, दया या आत्मबलपर आश्रित है। आत्मबलकी सफलताका सबसे बड़ा ऐतिहासिक प्रमाण तो यही है कि इतने युद्धों-हंगामोंके होते हुए भी दुनिया अबतक कायम है। यह इस बातका सबूत है कि युद्धबलके बजाय कोई और बल उसका आधार है।

हज़ारों बल्कि लाखों आदमी आपसमें मेल-मुहब्बतसे रहकर ही जिन्दगी गुजारते हैं। करोड़ों कुटुम्बोंके दुख-दर्द प्रेमके प्रभावसे मिट जाते हैं। सैकड़ों

जातियाँ आपसमें मिल-जुलकर रहती हैं, पर 'इतिहास' (हिस्ट्री) इसकी 'नोटिस' नहीं लेता, ले सकता भी नहीं। दया, प्रेम या सत्यका प्रवाह जब कहीं अटकता, टूटता है तभी इतिहासमें उसका उल्लेख होता है। दो भाई आपसमें लड़े। एकने दूसरेके सामने सत्याग्रह किया। पीछे दोनों फिर मिल-जुलकर रहने लगे। इसकी 'नोटिस' कौन लेता है ? अगर वकीलोंकी मददसे या दूसरे कारणोंसे दोनोंमें वैरभाव बढ़ता, वे हथियारों या अदालतोंकी मदद लेकर लड़ते (अदालतें भी एक प्रकारका हथियार, शरीरबल हैं) तो उनका नाम अखबारमें छपता। पास-पड़ोसवाले उनकी चर्चा करते और शायद इतिहास भी उनका जिक्र कर देता। कुटुम्बों, जमायतों और संघोंपर जो बात घटित होती है वही राष्ट्रपर भी होती है। कुटुम्बके लिए एक नियम हो और राष्ट्रके लिए दूसरा, यह माननेके लिए कोई कारण नहीं मिलता। इस प्रकार 'इतिहास'में अस्वाभाविक-स्वाभाविक क्रमको भंग करनेवाली घटनाओं का ही उल्लेख होता है। सत्याग्रह स्वाभाविक वस्तु है इसलिए इतिहासमें उसके उल्लेख की आवश्यकता नहीं होती।

पा०—आपके कहनेके अनुसार तो जान पड़ता है कि सत्याग्रहका उदाहरण इतिहासमें मिल ही नहीं सकता। इस सत्याग्रहको थोड़ा विस्तारसे समझानेकी जरूरत है, इसलिए आप जो कुछ कहना चाहते हैं उसे ज़रा खोलकर समझा दें तो अच्छा हो।

सं०—सत्याग्रह या आत्मबलको अंग्रेज़ीमें 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहते हैं। यह शब्द उस तरीकेके लिए व्यवहार किया गया है जिसमें अपने हक पानेके लिए लोगोंने खुद कष्ट उठाया है। यह शस्त्र-बलका उलटा है। मुझे जो काम पसन्द न हो उसे मैं न करूँ तो मैं सत्याग्रह या आत्मबलसे काम लेता हूँ। मिसालके लिए मान लीजिये, सरकारने एक कानून बनाया जो मुझपर 'लागू' होता है। वह मुझे

पसन्द नहीं है। अब अगर मैं सरकारपर हमला करके उसे वह कानून रद्द करनेको मजबूर करूँ तो मैंने शरीर-बलसे काम लिया। पर मैं उस कानूनको मंजूर ही न करूँ, और उसे न माननेकी जो सजा मिले उसे खुशीसे भुगत लूँ, तो मैंने आत्मबलसे काम लिया अथवा सत्याग्रह किया। सत्याग्रह में अपनी ही बलि देनी होती है।

इस बातको तो सभी स्वीकार करेंगे कि पर-बलिसे आत्म-बलि कहीं ऊँची चीज़ है। फिर सत्याग्रहकी लड़ाई अगर न्यायसंगत न हो तो केवल लड़नेवालेको ही कष्ट उठाना पड़ता है। यानी अपनी भूलकी सजा वह खुद भोगता है। दूसरोंको उसका दण्ड नहीं भोगना पड़ता। ऐसी घटनाएँ कितनी ही हो चुकी हैं जिनमें लोग नाहक दूसरोंसे लड़े-झगड़े। कोई भी आदमी निश्शंक होकर नहीं कह सकता कि अमुक काम खराब ही है। पर जबतक वह उसे खराब लगता है तबतक उसके लिए तो वह खराब ही है। ऐसी दशामें वह काम न करना और इसके बदलेमें जो दुःख मिले उसे भोग लेना, यही सत्याग्रहकी कुंजी है।

पा०—तब तो आप कानूनको तोड़ रहे हैं। यह तो राजद्रोह हुआ। हम लोग तो सदा कानून-पालक प्रजा माने गए हैं। आप तो 'एक्सट्रीमिस्ट' (गरमदल वालों) से भी दो क़दम आगे जाते हुए दिखाई देते हैं। 'ऐक्सट्रीमिस्ट' तो यही कहते हैं कि जो कानून बन चुका है उसका पालन तो हमें करना ही चाहिए। पर कानून खराब हो तो कानून बनानेवालेको मारकर निकाल दो।

सं०—मैं उनसे आगे जाता हूँ या पीछे रहता हूँ, इससे तो आपको या मुझे कोई मतलब नहीं। हमें तो क्या ठीक है, इसीकी खोज करनी है और उसके अनुसार चलना है।

कानून-पालक प्रजा होनेका सच्चा अर्थ यह है कि हम सत्याग्रही प्रजा हैं।

कोई कानून हमें पसन्द न आये तो हम कानून बनानेवालेका सिर नहीं फोड़ते। बल्कि उसे रद्द करानेके लिए उसे तोड़ते और इसकी सजा भुगतते हैं। कानून अच्छा हो या बुरा, हमें उसे मानना ही चाहिए, यह अर्थ तो आज-कलका मालूम होता है। पहले तो लोग जिस कानूनको जी चाहे तोड़ते और उसकी सजा भोग लेते थे।

जो कानून हमें अच्छे न लगते हों उन्हें माननेकी शिक्षा तो हमारी मर्दानगीको बट्टा लगानेवाली है, धर्म-विरुद्ध है और गुलामीकी हद्द है। सरकार कहे कि नंगे होकर नाचो तो क्या हम ऐसा करेंगे? अगर मैं सत्याग्रही हूँ तो मैं सरकारसे कहूँगा—"इस कानूनको अपने घर रखिए, मैं आपके सामने नंगा होनेवाला नहीं, नाचनेवाला भी नहीं।" पर हम तो ऐसे असत्याग्रही हो गये हैं कि सरकारके हुक्मपर नंगा होकर नाचनेसे भी ज्यादा ज़लील काम कर डालते हैं।

जो आदमी अपने मनुष्यत्वको समझता है, जो ईश्वरको डरता है, वह और किसीको नहीं डरता। मनुष्यके बनाये कायदे-कानूनको मानना उसपर फ़र्ज नहीं होता। खुद सरकार भी यह नहीं कहती कि "तुम्हें यह करना ही होगा।" वह कहती है कि "तुम यह करोगे तो तुम्हें सजा मिलेगी।" अपनी गिरी हुई दशामें हम यह मान लेते हैं कि कानून जो कहता है उसे करना हमारा फर्ज है, धर्म है। अगर लोग एक बार यह समझ लें कि जो कानून हमें अन्यायकर जान पड़े उसको मानना नामर्दी है तो फिर किसीका जोर-जुल्म हमें बाँधनेमें समर्थ नहीं हो सकता। यही स्वराज्यकी कुंजी है।

यह मानना नास्तिकपन और वहम है कि बहुसंख्यककी बात अल्पसंख्यकको माननी ही चाहिये। ऐसी मिसालें हजारों मिलेंगी जिनमें बहुतोंकी कही हुई बात

गलत और थोड़ोंकी कही हुई बात ही सही साबित हुई है। दुनियामें जितने भी सुधार हुए हैं सभी थोड़ेसे आदमियोंकी कोशिशोंसे हुए हैं जिन्होंने बहुतोंके विरोध का सामना करते हुए उनके लिए यत्न किया। ठगोंके गाँवमें अधिकांश जन तो यही कहेंगे कि ठगविद्या सीखनी ही चाहिए। तो क्या साधु पुरुष भी ठग बन जाय ? हर्गिज नहीं। अन्यायकारी कानूनको भी मानना, पालना हमपर फर्ज है, यह वहम जबतक हमारे दिमागसे दूर न होगा तबतक हमारी गुलामी जानेवाली नहीं और केवल सत्याग्रही ऐसे वहम को दूर कर सकता है।

शरीरबल, गोला-बारूदसे काम लेना सत्याग्रहके सिद्धान्तका विरोधी है। उसका अर्थ यह है कि जो बात हमें पसन्द है उसे हम विपक्षीसे जबर्दस्ती कराना चाहते हैं। यह जबर्दस्ती जायज हो तो फिर उसे भी हक है कि हमसे अपना कहा करानेके लिए हथियारकी ताकतसे काम ले। इस तरह तो हमारी नाव कभी घाटपर न पहुँचेगी। तेलीके बैलकी तरह आँखपर पट्टी बँधी होनेसे हम यह भले ही समझें कि हम आगे बढ़ रहे हैं, पर वास्तवमें तो हम उस बैलकी तरह कोल्हूका ही चक्कर काटते रहते हैं। जो लोग यह मानते हों कि अपनेको न रुचनेवाले कानूनको मानना इंसानपर फर्ज नहीं है उन्हें तो चाहिये कि सत्याग्रहको ही सच्चा साधन समझें, नहीं तो परिणाम अति विषम होगा।

पा०—आप जो कुछ कहते हैं उसका अर्थ मुझे यह जान पड़ता है कि सत्याग्रह कमजोरके लिए बहुत अच्छा साधन है, पर जब ये बलवान हो जाय तब तोप-बन्दूकसे काम ले सकते हैं।

सं०—यह तो आपने बड़ी नासमझीकी बात कही। सत्याग्रह तो सर्वोपरि है। वह तोप-बन्दूकके बलसे अधिक काम करता है। फिर वह कमजोरका हथियार कैसे माना जा सकता है ? सत्याग्रहके लिए जिस हिम्मत और मर्दानगीकी जरूरत होती

है वह तोप-बन्दूकका बल रखनेवालेके पास हो ही नहीं सकती। क्या आप यह मानते हैं कि निर्बल मनुष्य उस ठीक न लगनेवाले कानूनको तोड़ सकता है? गरमदलवाले शस्त्र-बलके हिमायती समझे जाते हैं। वे कानूनको माननेकी बात क्यों कहते हैं? मैं उन्हें दोष नहीं देता। उनसे दूसरी बात हो ही नहीं सकती। अंग्रेज़ोंको निकालकर जब वे राज करेंगे तब वे भी हमसे आपसे, अपने कानून मनवाना चाहेंगे। उनकी नीतिके लिए यही ठीक भी है। पर सत्याग्रही तो यही कहेगा कि जो कानून मुझे ठीक नहीं जान पड़ता उसे मैं न मानूँगा। भले ही इस अपराधके लिए मैं तोपदम कर दिया जाऊँ।

आप क्या मानते हैं? तोपदागकर सैकड़ोंको मार डालनेमें हिम्मतकी जरूरत है या हँसते हुए तोपके मुँहके सामने जाकर खड़े हो जानेमें? जो अपनी मौतको सिरपर लिये घूमता है वह रणधीर है या जो दूसरोंकी मौत अपनी मुट्ठीमें रखता है?

नामर्द कभी सत्याग्रही हो ही नहीं सकता इसे पक्का समझिये। हाँ, यह सही है कि देहसे दुबला-पतला आदमी भी सत्याग्रही हो सकता है। सत्याग्रह एक आदमी भी कर सकता है और लाखों आदमी मिलकर भी। सत्याग्रहीको फौज खड़ी करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। कुश्तीकी कला सीखनेकी जरूरत भी नहीं होती। उसने तो अपने मनको वशमें किया कि फिर वनराज सिंहकी तरह दहाड़ सकता है, और उसकी गर्जना उसके दुश्मन बने हुए लोगोंका कलेजा कँपा देती है।

सत्याग्रह ऐसी तलवार है जिसके सभी ओर धार है, उसे जैसे चाहें काममें ला सकते हैं। उससे काम लेनेवाला और जिसपर वह काममें लायी जाय दोनों सुखी होते हैं। वह खून नहीं बहाती, पर काट गहरी करती है। उसपर जंग नहीं लगता, न कोई उसे चुरा ही सकता है। सत्याग्रहीको किसीका मुकाबला करना

पड़े तो वह इसमें थकता नहीं। सत्याग्रहीकी तलवारको म्यानकी जरूरत नहीं होती। उसे कोई छीन भी नहीं सकता। फिर भी आप सत्याग्रहको कमजोरका हथियार मानें तो यह शुद्ध अंधेर ही होगा।

पा०—आप कहते हैं कि सत्याग्रह हिन्दुस्तानका खास हथियार है। तो क्या हिन्दुस्तानमें तोप-बन्दूकसे कभी काम नहीं लिया गया?

सं०—जान पड़ता है, आप मुट्ठीभर राजा-महाराजोंको ही हिन्दुस्तान मानते हैं। पर मेरी समझसे तो हिन्दुस्तानके मानी उसके करोड़ों किसान हैं, जो राजा-नवाब और हम सबके अस्तित्वका आधार हैं।

राजा-बादशाह तो हथियारसे काम लेंगे ही। उनकी तो यह रीति ही हो गई है। उन्हें तो हुक्म चलाना है। पर हुक्म बजानेवालेको तोप-बन्दूककी जरूरत नहीं पड़ती, और दुनियाका बड़ा भाग हुक्म बजानेवाला ही है। आज्ञापालकोंको या तो शस्त्रबलसे काम लेना सीखना होगा या आत्मबलसे काम लेना। जहाँ उन्हें शस्त्रबलकी शिक्षा दी जाती है वहाँ राजा-प्रजा दोनों पागल-से हो जाते हैं। पर जहाँ हुक्म बजानेवालोंको आत्मबलसे काम लेनेकी शिक्षा मिली हो वहाँ राजाका जुल्म उसकी तलवारकी नोकसे आगे नहीं जा सकता, क्योंकि सच्चे आदमी अन्यायकृत आज्ञाकी परवाह नहीं करते। किसान किसीकी तलवारके वश नहीं हुए और न होनेवाले हैं। उन्हें न तलवार चलाना आता है और न दूसरोंकी तलवारसे वे डरते हैं। वह राष्ट्र महान् है जो सदा मौतको तकिया बनाकर सोता है। जिसने मौतका डर छोड़ा वह सभी भयोंसे मुक्त हो गया।

इस तसवीरमें रंग कुछ ज्यादा जरूर भरा गया है। पर शस्त्रबलके जादूने जिन लोगोंको मोह रखा है उनके लिए इसमें तनिक भी अतिरंजना नहीं है।

सच तो यह है कि हिन्दुस्तानके किसानों, हिन्दुस्तानकी जनताने अपने

जीवन तथा राजकाजमें सत्याग्रहसे सदा काम लिया है। जब राजा जुल्म करता है तब प्रजा उससे सहयोग नहीं करती। यही सत्याग्रह है।

मुझे एक घटना याद आती है। एक रियासतमें राजाने कोई हुक्म दिया जो प्रजाको पसन्द न आया। लोगोंने गाँव खाली करना शुरू किया। यह देख राजा घबराया और उसने प्रजासे माफी माँगी और हुक्म वापस ले लिया। ऐसी मिसालें बहुतेरी मिल सकती हैं, खासकर अपने देशमें। जहाँ ऐसी सत्याग्रही प्रजा हो वहीं सच्चा स्वराज्य है, उससे रहित स्वराज्य कुराज्य है।

पा० —तब तो आप कहेंगे कि हमें अपने शरीरको मजबूत बनानेकी जरूरत ही नहीं है।

सं०—यह आपने कैसे समझा? शरीरको कसे बिना तो सत्याग्रही होना ही कठिन है। जो शरीर आरामतलबीसे निर्बल बना लिया गया है उस शरीरमें बसनेवाली आत्मा भी बहुत करके निर्बल ही होती है। और जहाँ मनका बल नहीं है वहाँ आत्माका बल कहाँसे आयेगा? बालविवाह-आदि और आरामतलबीकी रहन-सहन त्यागकर हमें अपने शरीरको तो पोढ़ा बनाना ही होगा। मरियल आदमीको तोपके मुँहके सामने खड़ा होनेको कहूँ तो मैं अपनी ही हँसी कराऊँगा।

पा०—आप जो कुछ कह रहे हैं उससे तो ऐसा जान पड़ता है कि सत्याग्रही होना कोई ऐसी-वैसी बात नहीं। यह बात है तो आपको यह समझा देना चाहिये कि कोई आदमी सत्याग्रही कैसे हो सकता है?

सं०—सत्याग्रही होना है तो आसान, पर जितना आसान है उतना ही कठिन भी है। चौदह बरसके बालकको सत्याग्रही बनते मैंने देखा है। रोगीको भी सत्याग्रही होते देखा है और यह भी देखा है कि जो लोग शरीर से तगड़े और दूसरी सब तरह सुखी थे वे सत्याग्रही न बन सके।

अनुभवसे मैंने देखा है कि जो लोग देशसेवाके लिए सत्याग्रहको अपनाना चाहते हों उन्हें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, गरीबीका जीवन अपनाना चाहिए, सत्यका व्रत तो लेना ही चाहिये, और निर्भय भी बनना चाहिये।

ब्रह्मचर्य एक महाव्रत है जिसके बिना मनकी गाँठ कसी नहीं जा सकती। ब्रह्मचर्यके अपालनसे मनुष्य वीर्यरहित, बेदम और कायर हो जाता है। यह बात अगणित उदाहरणों से सिद्ध की जा सकती है कि जिसका मन विषय-वासनामें भ्रमता रहता है उससे कोई बड़ा काम नहीं होनेका। तब घर-गृहस्थीवालोंको क्या करना चाहिये, यह प्रश्न उठता है, पर यह कहने का साहस कोई नहीं कर सकता। संभोग केवल सन्तानोत्पादनके लिए ही विहित है। पर सत्याग्रहीको तो सन्तानकी कामना भी न होनी चाहिये। अतः वह गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है। यह बात अधिक खोलकर लिखनेकी नहीं है। स्त्रीका विचार क्या है, यह सब कैसे होगा, आदि प्रश्न इस प्रसंगमें उठते हैं। पर जिसे किसी महत्कार्यमें योग देना है उसे इन सवालोंको हल करना ही होगा।

जैसे ब्रह्मचर्य पालनकी आवश्यकता है वैसे ही गरीबीका व्रत लेने की भी। पैसेका लोभ और सत्याग्रहकी साधना दोनों चीजें एक साथ हो ही नहीं सकतीं। इसका मतलब यह नहीं है कि जिसके पास पैसा है वह उसे फेंक दे। पर पैसेकी चाह उसे न रहे, यह जरूरी है। सत्याग्रह करते हुए पैसा चला जाय तो उसे इस का गम न होना जाहिये!

सत्याग्रहको हमने सत्यका बल बतलाया है। जो सत्यका सेवन न करे वह सत्यका बल कैसे दिखा सकता है? इसलिए सत्यकी तो सदा आवश्यकता होगी ही। कितना ही नुकसान होता हो, तो भी सत्यका पल्ला नहीं छोड़ा जा सकता। सत्य किसीको सताना नहीं चाहता, इसलिए सत्याग्रहीकी कोई गुप्त सेना नहीं हो

सकती। दूसरेकी जान बचानेके लिए झूठ बोलना चाहिये या नहीं, ऐसे सवाल हमें नहीं उठाने चाहिये। जिसे झूठका बचाव करना होता है वही ऐसे सवाल उठाते हैं। जिसे सत्यका ही मार्ग स्वीकार करना है उसके सामने ऐसे धर्मसंकट आते ही नहीं। और आ जायँ तो सत्यवादी मनुष्य उस संकटसे पार हो जाता है।

अभयके बिना तो सत्याग्रहीकी गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती। उसे सब प्रकार और सभी बातोंमें निर्भय होना चाहिये। धन-दौलत, झूठा मान-अपमान, नेह-नाता, राजदरबार, चोट-मृत्यु—सबके भयसे मुक्त हो जाय तभी सत्याग्रहका पालन हो सकता है।

इन सबको कठिन मानकर छोड़ नहीं देना चाहिये। जो कुछ सिरपर आ पड़े उसे सह लेनेकी शक्ति प्रकृतिने मनुष्य मात्रको दे रखी है। ये तो ऐसे गुण हैं कि जिन्हें अपना जीवन देशसेवामें न लगाना हो उन्हें भी इनको अपनाना चाहिये।

फिर यह भी जान लेना चाहिए कि जिन्हें हथियार बाँधना हो उन्हें भी इन गुणोंकी आवश्यकता होगी ही। कोई इच्छा करते ही रणवीर नहीं बन जाता। योद्धा बननेके लिए ब्रह्मचर्यका पालन करना और भिखारी बनना होगा। जो निर्भय नहीं है वह तो रनमें लड़ चुका। कोई यह सोच सकता है कि लड़नेवालेको सत्यका व्रत लेनेकी उतनी आवश्यकता नहीं है। पर जहाँ अभय है वहाँ सत्य सहज ही बसता है। मनुष्य जब सत्यको छोड़ता है तब किसी-न-किसी प्रकार के भयसे ही तो छोड़ता है।

अतः इन चार गुणोंसे डरनेकी ज़रूरत नहीं है। फिर तलवार बाँधनेवालेको कितनी ही दूसरी फालतू बातें करनी होती हैं जिनकी आवश्यकता सत्याग्रहीको नहीं होती। इन फालतू बातोंका कारण भय ही है। जब वह भयसे सर्वथा मुक्त हो जायगा तब तलवार उसी छन उसके हाथसे गिर जायगी। इस सहारेकी उसे

ज़रूरत ही न रहेगी। जिसका किसीसे वैर नहीं उसे तलवारकी ज़रूरत नहीं होती। एक आदमीका अचानक शेरसे सामना हो गया। उसके हाथमें लाठी थी, वह अपने आप उठ गयी। उसने देखा कि उसकी निर्भयता महज जबानी जमाखर्च थी। उसने लाठी उसी छन फेंक दी और सारे भयोंसे मुक्त हो गया।

: १८ :

शिक्षा

पा०—आपने इतना सब कहा, पर शिक्षाकी कहीं आवश्यकता ही न बताथी। शिक्षाकी कमीका रोना तो हम सदा रोया करते हैं, शिक्षाको सबके लिए अनिवार्य कर देनेका आन्दोलन सारे हिन्दुस्तानमें चल रहा है। बड़ौदा-नरेशने अपने राज्यमें अनिवार्य शिक्षाका प्रबन्ध किया है जिसकी ओर सभीकी निगाह खिंच गयी है। हम महाराजको इसके लिए धन्यवाद दे रहे हैं। क्या यह सारा प्रयास व्यर्थ समझा जाय?

सं०—अपनी सभ्यताको अगर हम सर्वश्रेष्ठ मानते हों तो मुझे खेदके साथ कहना होगा कि यह प्रयास बहुत कुछ व्यर्थ ही है। महाराज और हमारे दूसरे बड़े नेता सबको शिक्षा दिलानेका जो यत्न कर रहे हैं उसमें उनका हेतु निर्मल है। इसलिये वे तो हमारे धन्यवादके ही पात्र हैं। पर उनके प्रयासका जो फल होना संभव है उसकी ओरसे हम आँखें मूँद नहीं सकते।

शिक्षाके मानी क्या हैं? उसका अर्थ अगर अक्षरज्ञान मात्र हो तब तो एक औजार हुआ जिसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। जिस औजारसे नश्तर लगाकर रोगीका रोग दूर किया जाता है उसीसे किसीकी जान भी ली जा सकती है। यही बात अक्षरज्ञानकी है। हम देखते हैं कि इसका दुरुपयोग अधिक

लोग करते हैं, सदुपयोग थोड़े ही करते हैं। यह बात सही हो तो इससे यह साबित होता है कि अक्षरज्ञानसे दुनियाको फायदेकी बनिस्बत नुकसान ही अधिक हुआ है।

शिक्षाका साधारण अर्थ अक्षरज्ञान ही होता है। लड़कोंको पढ़ना-लिखना और हिसाब लगाना सिखा देना प्रारम्भिक शिक्षा कहलाता है। एक किसान ईमानदारीसे खेती-किसानी करके अपनी रोटी कमाता है। उसे दुनियाका सामान्य ज्ञान है। अपने माँ-बाप, अपनी स्त्री, अपने बच्चोंके साथ वह किस तरह व्यवहार करे, जो लोग उसके गाँवमें बसते हैं उनके साथ कैसी राह-रस्म रखे, इस सबका उसे पूरा ज्ञान है। सदाचारके नियमोंको वह समझता और उनका पालन करता है, पर उसे दस्तखत करना नहीं आता। ऐसे आदमीको आप अक्षरज्ञान कराके क्या करना चाहते हैं? इससे उसके सुखमें कौन-सी वृद्धि करेंगे? आप उसके हृदयमें अपने झोंपड़े और अपनी दशाके प्रति असन्तोष पैदा करना चाहते हैं। यह करना हो तो भी उसे अक्षरज्ञान करानेकी ज़रूरत नहीं है। पश्चिमी विचारोंके प्रवाहमें पड़कर हमने इतना तो याद कर लिया कि सबको पढ़ना-लिखना सिखा देना चाहिए, पर उसके हानि-लाभका विचार नहीं करते।

अब ऊँची शिक्षाको लीजिए। मैंने भूगोल पढ़ा, खगोल पढ़ा, बीजगणित सीखा, भूमितिका ज्ञान प्राप्त किया, भूगर्भ विद्याके गर्भमें प्रवेश किया। पर इन सबसे मैंने अपना या अपने आस-पासवालोंकी कौन-सी भलाई की? मैंने यह सारा ज्ञान किसलिए प्राप्त किया? अंग्रेज़ विद्वान् प्रोफेसर हक्सलेने शिक्षाके विषयमें कहा है—"सच्ची शिक्षा उस आदमीको मिली है जिसका शरीर ऐसा सधा हुआ है कि उसके अंकुशमें रहता है और सौंपे हुए कामको आसानीसे और प्रसन्नतापूर्वक करता है। जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है, जिसका

मन प्रकृतिके नियमोंके ज्ञानसे भरपूर है, जिसकी इंद्रियाँ जिसके वशमें हैं, जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध है, जिसे बुरे कामोंसे नफरत है और दूसरोंको भी अपने ही जैसा समझता है। ऐसे ही आदमीको सच्ची शिक्षा मिली हुई कह सकते हैं, क्योंकि वह प्रकृतिके नियमोंके अनुसार चलता है। वह प्रकृतिका अधिकतम उपयोग करेगा और प्रकृति उसका।"

अगर सच्ची शिक्षा यही है तो मुझे शपथपूर्वक कहना चाहिए कि जिन शास्त्रोंके नाम मैंने ऊपर गिनाये हैं उनसे अपने शरीर या अपनी इन्द्रियोंको बसमें करनेमें मैं कोई मदद न ले सका। अतः प्रारम्भिक शिक्षा हो या उच्चशिक्षा, उनसे हमें उस कार्यमें सहायता नहीं मिलती जो हमारा असल काम है। उनसे हम मनुष्य नहीं बनते, अपना फर्ज़ नहीं पहचान पाते।

पा०—अगर यही बात है तो मुझे आपसे पूछना होगा कि आप जो इतना सारा ज्ञान उगल रहे हैं यह किसका प्रताप है? आपने अक्षरज्ञान और ऊँची शिक्षा न पाई होती तो मुझे यह सब कैसे समझा सकते थे।

सं०—आपने चपत तो ठीक जड़ी, पर मेरा जवाब सीधा ही है। यह मैं नहीं मानता कि मैंने ऊँची या नीची शिक्षा न पायी होती तो मैं बिल्कुल निकम्मा होता और न यही मानता हूँ कि मेरे बोलनेसे कुछ-न-कुछ सेवा होती ही है। पर अब बोलकर देश-समाजके लिए उपयोगी बननेकी इच्छा अवश्य है, और इस यत्नमें जो कुछ पढ़ा है उसका उपयोग करता हूँ। पर उसका उपयोग—वह उपयोग कहा जा सके तो भी—मैं अपने करोड़ों भाइयोंके लिये नहीं कर सकता। केवल आप जैसे-पढ़े-लिखे लोगोंके लिये ही कर सकता हूँ। इससे भी मेरे विचार की पुष्टि होती है। आप और मैं दोनों झूठी शिक्षाके पंजेमें फँसे हुए हैं। मैं मानता हूँ कि अब मैं उससे छूट गया हूँ और अपने अनुभवका लाभ आपको

पहुँचाना चाहता हूँ। जो शिक्षा मैंने पायी है उसका इसमें उपयोग कर आपको उसकी बुराइयाँ बताता हूँ।

फिर मुझे तमाचा जड़नेमें आप यह भूल गये कि मैंने अक्षरज्ञानको हर हालमें बुरा नहीं कहा है। मैंने इतना ही कहा है कि हमें उस ज्ञानका अन्धभक्त नहीं हो जाना चाहिए, वह कुछ हमारी कामधेनु नहीं है। वह तो अपनी जगहपर ही शोभा दे सकता है। और वह जगह यह है कि जब हम अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लें, अपनी नीतिकी नींव दृढ़ कर लें, तब हमें अक्षरज्ञानकी इच्छा हो तो उसे प्राप्तकर हम उसका सदुपयोग अवश्य कर सकते हैं। आभूषणके रूपमें वह हमें सज सकती है। पर अक्षरज्ञानका यही उपयोग हो तो ऐसी शिक्षाको हमारे लिए अनिवार्य कर देनेकी आवश्यकता नहीं रहती। इसके लिए तो हमारी पुरानी पाठशालाएँ ही काफी हैं। नीतिकी शिक्षाको उनमें पहला स्थान दिया गया है। वही प्रारम्भिक शिक्षा है। उस नींवपर जो इमारत खड़ी की जायगी वह टिकाऊ होगी।

पा०—तब क्या मैं यह मान सकता हूँ कि स्वराज्य प्राप्तिके लिए आप अंग्रेजी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं समझते?

सं०—इसका जवाब 'हाँ' भी है और 'ना' भी। करोड़ों आदमियोंको अंग्रेजी पढ़ाना तो उन्हें गुलामीमें फँसा देना है। मेकालेने इस देशमें जिस शिक्षा-की नींव डाली वह सच पूछिए तो हमारी गुलामीकी नींव थी। मैं यह नहीं कहता कि उसने ऐसा समझकर अपने निबन्ध लिखे। पर उसके कार्यका फल यही रहा। स्वराज्यकी बात हम पराई भाषामें करते हैं, यह कैसी दयनीय दशा है?

हमें यह भी जान लेना चाहिए कि जो पढ़ाई अंग्रेजोंका उतारा है वह हमारा शृङ्गार बन रही है। उनके ही विद्वान् इसमें दोष-त्रुटियाँ निकाला करते हैं।

शिक्षाकी पद्धतिमें हेर-फेर होता ही रहता है। पर हम तो अज्ञानवश उन्हीं चीजोंसे चिपके रहते हैं जिन्हें वे निकम्मी समझकर फेंक देते हैं। वहाँ सभी अपनी भाषाकी उन्नतिके लिए श्रम कर रहे हैं। वेल्स इंगलैंडका एक छोटा सा भाग है। वहाँकी भाषा एक सड़ी-सी बोली समझी जाती है। पर अब उसका जीर्णोद्धार हो रहा है। इस बातकी बड़ी कोशिश हो रही है कि वेल्सके बच्चे वेल्श भाषामें ही बोलें। इंगलैंडके (तत्कालीन) अर्थमन्त्री (अब स्वर्गीय) श्री लाइडजार्ज इस आन्दोलनके अगुआ हैं। पर हमारी दशा क्या है? हम आपसमें एक दूसरेको पत्र लिखते हैं तो भूलोंसे भरी हुई अंग्रेजीमें ही लिखते हैं। गलत अंग्रेजी लिखनेके दोषसे हमारे साधारण एम. ए. भी मुक्त नहीं हैं। हमारे उच्चतम विचारोंका वाहन अंग्रेजी है। हमारी कांग्रेसकी कारवाई अंग्रेजीमें होती है, हमारे सबसे अच्छे अखबार अंग्रेजीमें ही निकलते हैं। मेरा तो विश्वास है कि यह ढर्रा कुछ अधिक दिन चलता रहा तो आनेवाली पीढ़ियाँ हमें कोसेंगी, धिक्कारेंगी और उनका शाप हमारी आत्माको लगेगा।

आपको जानना चाहिए कि अंग्रेजी पढ़कर हमने अपने राष्ट्रको गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षासे ढोंग-ढकोसला, अत्याचार आदि बढ़े हैं। अंग्रेजी पढ़े हुए हिन्दुस्तानियों ने साधारण लोगोंको ठगने और उन्हें डरवानेमें कोई कसर नहीं रखी है। अब अगर हम उनके लिए कुछ कर रहे हैं तो अपने ऊपर लदे हुए उनके ऋणका एक अंशमात्र चुका रहे हैं।

यह क्या कुछ थोड़ा जुल्म है कि अपने देशमें काम पानेके लिए भी हमें अंग्रेजीका ही सहारा लेना पड़ता है? मैं जब बैरिस्टर बन जाता हूँ तब मुझसे अपनी भाषामें बोला नहीं जाता और मेरे पास एक ऐसा आदमी होना चाहिए जो मेरी अपनी भाषासे ही मेरे लिए उलथा कर दे। यह क्या कोई छोटी विडंबना है?

यह गुलामीकी हद नहीं तो क्या है ? इसके लिए मैं अंग्रेजोंको दोष दूँ या अपने आपको ? हम अंग्रेजीदाँ लोग ही हिन्दुस्तानको गुलाम बनानेवाले हैं। इसीलिए राष्ट्रकी हाय अंग्रेजों पर नहीं, हमारे ही ऊपर पड़ेगी ।

मैंने आपसे कहा है कि मेरा जवाब 'हाँ' भी है और 'ना' भी । 'हाँ' कैसे है, यह तो मैंने आपको समझा दिया । अब 'ना' कैसे है यह बतलाता हूँ ।

बात यह है कि सभ्यताके रोगने हमें इस बुरी तरह जकड़ लिया है कि अंग्रेजी पढ़े बिना हमारा काम चले, ऐसा समय ही नहीं रहा । अतः जो लोग अंग्रेजी पढ़ चुके हैं वे उस शिक्षाका सदुपयोग करें । जहाँ जरूरी मालूम हो वहाँ उससे काम लें। अंग्रेजोंके साथ व्यवहार करनेमें, उन हिन्दुस्तानियोंके लिए जिनकी भाषा हम नहीं समझते, और अंग्रेज खुद अपनी सभ्यतासे कैसे आजिज़ आ गये हैं यह जाननेके लिए हमें अंग्रेजी सीखनी चाहिए । जिन्होंने अंग्रेजी पढ़ ली है उन्हें चाहिए कि अपने बच्चोंको पहले सदाचार और अपनी भाषा सिखायें। फिर हिन्दुस्तानकी एक दूसरी भाषा सिखायें । जब वे प्रौढ़ वयके हो जायँ तब चाहें तो अंग्रेजी पढ़ सकते हैं । पर उद्देश्य यही हो कि हमारे लिए अंग्रेजी पढ़ना जरूरी न हो, उससे पैसा कमाना नहीं। इसमें भी हमें यह सोचना होगा कि हम अंग्रेजी-के जरिये क्या सीखें, क्या न सीखें । किन शास्त्रोंका अध्ययन करें, इसका भी विचार करना होगा । यह बात तो जरासा सोचनेसे ही समझमें आ सकती है कि अगर हम अंग्रेजोंकी डिग्रियाँ आदि लेना बन्द कर दें तो अंग्रेज अधिकारियोंके कान खड़े हो जायँ ।

पा०—तब शिक्षा कैसी दी जाय ?

सं०—इसका जवाब कुछ तो ऊपर दिया जा चुका है पर इसपर थोड़ा विचार और कर लें । मैं तो सोचता हूँ कि हमें अपने देशकी सभी भाषाओंकी

उन्नति करनी होगी। अपनी भाषामें हमें क्या-क्या चीज पढ़नी चाहिए, इसपर विस्तारसे विचार करनेका यह स्थान नहीं है। अंग्रेजीमें जो कामकी पुस्तकें हैं उनका उलथा हमें करना होगा। बहुतसे शास्त्र पढ़ लेनेका ढोंग और मोह हमें छोड़ देना चाहिए। धर्म अथवा सदाचारकी शिक्षा तो हमें सबसे पहले मिलनी ही चाहिए। हर एक शिक्षित हिन्दुस्तानीको अपनी भाषाका वह हिन्दू हो तो संस्कृतका, मुसलमान हो तो अरबीका और पारसी हो तो फारसीका ज्ञान होना चाहिए। हिन्दी तो सभीको आनी चाहिए। कुछ हिन्दुओंको अरबी-फारसी और कुछ मुसलमानों-पारसियोंको संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तरी और पश्चिमी भारतके कुछ लोगोंको तामिल सीखनी चाहिए। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही होनी चाहिए, जिसे फारसी या नागरीमेंसे चाहे जिस लिपिमें लिखनेकी आज़ादी हो। हिन्दू-मुसलमानोंमें मेल-जोल बनाये रखनेके लिए बहुतसे हिन्दुस्तानियोंको दोनों लिपियाँ आना जरूरी है। हम यह कर सकें तो अपने आपसके व्यवहारसे अंग्रेजीको निकाल बाहर कर सकते हैं।

और यह सब किसके लिए करना है? हम गुलाम बन जानेवालोंके लिए। हमारी गुलामीसे राष्ट्र गुलाम बना है। हम आज़ाद हो जायँ तो उसे आज़ाद हुआ ही समझिये।

पा०—आपने जो धर्म-शिक्षाकी बात कही वह तो टेढ़ी खीर है।

सं०—पर उसके बिना छुटकारा भी तो नहीं है। नास्तिकताका पौधा भारतकी भूमिमें नहीं पनप सकता। यह काम टेढ़ा ज़रूर है। धर्म-शिक्षाकी बात सोचते ही सिर चक्कर खाने लगता है। अपने धर्माचार्योंको हम ढोंगी और स्वार्थी पाते हैं। उन्हें मनाना होगा। इसकी कुंजी मुल्लाओं, दस्तूरों और ब्राह्मणोंके हाथमें है। पर उनमें सद्बुद्धि न उपजे तो अंग्रेज़ी शिक्षासे जो उत्साह हममें जगा है

उसका उपयोग कर हम लोगोंको नीतिशिक्षा दे सकते हैं। यह कुछ बहुत कठिन बात नहीं है। अभी तो भारतीय समुद्रका किनारा भर गन्दा हुआ है और जो उस गन्दगीमें सन गये हैं उन्हींको साफ होना है। हम लोग जो इस श्रेणीमें आते हैं, अपनी सफाई बहुत कुछ खुद कर सकते हैं। मेरी यह आलोचना भारतके करोड़ों जनों, भारतकी साधारण जनताके लिए नहीं है। हिन्दुस्तानको अपनी मूल-दशामें लानेके लिये खुद हमींको अपनी असली हालतमें आना है, बाकी करोड़ों लोग तो अपनी असली हालतमें हैं ही। हमारी अपनी सभ्यतामें सुधार, बिगाड़, ऊपर उठना, नीचे गिरना काल-क्रमसे होता ही रहेगा, हमें बस यही प्रयत्न करना है कि पश्चिमकी सभ्यताको अपने देशसे निकाल बाहर करें। बाकी सब तो अपने आप हो जायगा।

: १६ :

कल-कारखाने

पा०—जब आप पश्चिमी सभ्यताको अर्द्धचन्द्र देनेकी बात कहते हैं तब आप यह भी कहेंगे कि कल-कारखानोंकी हमें ज़रूरत नहीं।

सं०—यह सवाल करके आपने मेरे घावको हरा कर दिया। (स्व०) श्री रमेशचन्द्रदत्तका लिखा हुआ 'हिन्दुस्तानका आर्थिक इतिहास' पढ़कर मुझे रुलाई आ गयी थी। अब भी उसको याद करता हूँ तो मेरा दिल भर आता है। कल-कारखानोंकी मारने ही तो हिन्दुस्तानका यह हाल किया है। मैंचेस्टरने हमें जो नुकसान पहुँचाया उसकी तो कोई हद ही नहीं। हिन्दुस्तानकी दस्तकारी जो लग-भग समाप्त हो गयी वह मैंचेस्टरकी ही कृपा है।

पर मैं भूलता हूँ। मैंचेस्टरको कैसे दोष दिया जा सकता है? हम मैंचेस्टरका कपड़ा पहनने लगे तो वह कपड़ा बुनने लगा। जब मैंने बंगालकी बहादुरीका हाल पढ़ा तो मुझे बड़ा हर्ष हुआ। बंगालमें कपड़ेकी मिलें न थीं, इसलिए लोगोंने हाथ-करघेकी बुनाईके असली धन्धेको फिर अपना लिया। बंगाल बम्बईकी मिलोंको प्रोत्साहन दे रहा है, यह तो अच्छा ही है, पर वह कल-कारखानोंमें बने हुए सारे मालका बहिष्कार कर देता तो और भी अच्छा होता।

कल-कारखानोंने यूरोपको उजाड़ना शुरू कर दिया है और अब उनकी हवा

हिन्दुस्तानमें भी पहुँच गयी है। कलें आधुनिक सभ्यताकी खास निशानी हैं और मैं तो साफ देख रहा हूँ कि ये महापाप हैं।

बम्बईकी मिलोंमें काम करनेवाले मज़दूर पूरे गुलाम बन गये हैं। वहाँ काम करनेवाली स्त्रियोंकी दशा देखकर तो हर आदमीका कलेजा काँप उठेगा। जब मिलोंकी बाढ़ नहीं आयी थी तब ये स्त्रियाँ कुछ भूखों नहीं मरती थीं। कलोंकी हवा जोरसे बही तो हिन्दुस्तानकी दशा बहुत दयनीय हो जायगी। मेरी बात आपके गलेमें तो अटकेगी, पर मुझे कहना ही होगा कि हिन्दुस्तानमें मिलें खड़ी करनेसे यह अधिक अच्छा होगा कि आज भी हम मैंचेस्टरको पैसा दें और उसका रद्दी-सद्दी माल इस्तेमाल करें। उसका कपड़ा काममें लानेसे तो हमारा केवल पैसा ही जायगा और हिन्दुस्तानमें मैंचेस्टर बनानेसे हमारा पैसा तो हिन्दुस्तानमें ही रहेगा, पर वह पैसा हमारा खून लेगा, क्योंकि वह हमारे चरित्रका नाश करेगा। जो लोग मिलोंमें काम करते हैं उनकी नीति, उनका चरित्र कैसा है, यह खुद उन्हींसे जाकर पूछिये। जो लोग इन कारखानोंकी बदौलत मालामाल हो गये हैं वे नीतिकी दृष्टिसे दूसरे पैसेवालोंसे अच्छे हों, इसकी कोई सम्भावना नहीं। यह मानना नासमझी ही होगा कि अमरीकाके राकफेलरसे हिन्दुस्तानका राकफेलर अच्छा होगा। गरीब हिन्दुस्तान आज़ाद हो सकता है, पर अनीतिकी कमाईसे धनी होनेवाले हिन्दुस्तानका छुटकारा नहीं होनेका।

मैं तो देखता हूँ कि हमें यह कबूल करना होगा कि हिन्दुस्तानमें अंग्रेज़ी राज्यको कायम रखनेवाले ये पैसेवाले ही हैं। उनका स्वार्थ उसके बने रहनेमें ही है। पैसा मनुष्यको रंक बना देता है। इसके जोड़की दूसरी चीज़ विषय-वासना है। ये दोनों चीज़ें जहरीली हैं। इनका विष साँपके विषसे अधिक घातक है। साँप डसता है तो देह लेकर ही छोड़ देता है, पर पैसेका लोभ या विषयकी

वासना डसती है तो देह, मन, प्राण सब लेकर भी नहीं छोड़ती। अतः अपने देशमें मिलें बढ़ें तो इसमें हमारे लिए खुश होने की कोई बात नहीं।

पा०—तो क्या मिलें बन्द कर दी जायँ?

सं०—यह बात जरा मुश्किल है। जमी हुई चीज़को हटाना कठिन होता है। इसलिये कार्यका अनारंभ ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी मानी गई है। मिल-मालिकोंको हम नफरतकी निगाहसे नहीं देख सकते; उनपर तो हमें दया आनी चाहिए। वे एकाएक अपनी मिलोंको तोड़ दें, यह तो मुमकिन ही नहीं। पर हम उनसे यह प्रार्थना कर सकते हैं कि वे नये कारखाने न खोलें। वे भले हों तो खुद धीरे-धीरे अपना कारबार समेट लेंगे। वे घर-घर पुराने और प्रौढ़ चरखेकी स्थापना करा सकते हैं और लोगोंके बुने हुए कपड़े को लेकर बेच सकते हैं। पर वे यह सब न करें तो भी लोग खुद कल-कारखानोंकी बनी हुई चीज़ोंको काममें लाना बन्द कर सकते हैं।

पा०—यह तो कपड़े की बात हुई। पर कल-कारखानोंमें तो बननेवाली बेशुमार चीज़ें हैं। उनके लिए दो ही रास्ते हैं—या तो हम उन्हें विदेशियोंसे लें या फिर अपने यहाँ वैसी मशीनें खड़ी करें।

सं०—सचमुच हमारे देवतातक अब जर्मनीकी मशीनोंमें ढलकर आ रहे हैं। फिर आलपीन, दियासलाई और झाड़-फानूसका तो जिक्र ही बेकार है। पर मेरा जवाब तो एक ही है—जब ये सारी चीज़ें मशीनसे नहीं बनती थीं तब हिन्दुस्तान क्या करता था? वही वह आज भी कर सकता है। आलपीन जबतक हाथसे न बनने लगे तबतक बिना आलपीन के ही काम चलायेंगे। झाड़ फानूसको विदा कर देंगे और मिट्टी के दियेमें तेल डालकर खेतमें पैदा रूईकी बत्ती बना उजाला कर लेंगे। इससे हमारी आँखें बचेंगी, पैसा बचेगा और हम स्वदेशीवाले बने

रहेंगे। यों इस दीयेसे स्वराज्यका दीपक भी जला लेंगे।

यह तो मुमकिन ही नहीं कि ये सारी बातें सभी लोग एक साथ करने लगें या कुछ लोग मशीनकी बनी हुई सारी चीज़ोंको एकबारगी छोड़ दें। पर अगर यह ख़याल सही है तो हम सदा उसकी खोजमें रहेंगे कि हम किन चीजोंको छोड़ सकते हैं और सदा एक-एक दो-दो चीज़ें छोड़ते जायँगे। हमारी देखादेखी दूसरे भी ऐसा करेंगे। पहले विचार पक्का हो जाना चाहिए, फिर उसके अनुसार काम होगा। पहले एक ही आदमी करेगा, फिर दस करेंगे, उसके बाद सौ करेंगे। यों गणितके नारियलकी तरह ये बढ़ते ही जायँगे। बड़े लोग जो काम करते हैं छोटे भी वही करते हैं और करेंगे। समझिए तो बात बहुत छोटी और सीधी है। हमें इस इन्तजारमें बैठे नहीं रहना चाहिए कि जब दूसरे करेंगे तब हम भी करेंगे। हमें तो चाहिए कि ज्योंही कोई बात हमारी समझमें आ जाय त्योंही उसे शुरू कर दें। जो ऐसा नहीं करते वे अवसर खो देंगे। जो समझकर भी नहीं करता वह ढोंगी और कायर कहा जायगा।

पा०—अच्छा, ट्राम और बिजलीके बारेमें आप क्या कहते हैं?

सं०—आपका यह सवाल तो बहुत 'लेट' हो गया। अब तो वह बेमानी-सा हो गया। कलोंने अगर हमारा नाश किया है तो ट्रामें क्या नहीं करतीं? कल-कारखाने तो साँपके बिल हैं जिनके भीतर एक नहीं सैकड़ों साँप होते हैं। एकके पीछे दूसरा निकलता ही आता है। जहाँ कल-कारखाने होंगे वहाँ बड़े शहर होंगे ही। जहाँ बड़े शहर हों वहाँ रेल और ट्राम होनी ही चाहिए। बिजलीकी रोशनी-की जरूरत भी वहीं होती है। यह तो आप जानते ही होंगे कि इंगलैंडमें भी गाँवोंमें ट्राम और बिजलीकी रोशनी नहीं है। आप सच्चे वैद्य-डाक्टरों से पूछें तो वे आप को बतायेंगे कि जहाँ रेल, ट्रामें आदि बढ़ी हैं वहाँ लोगोंकी तन्दुरुस्ती बिगड़ गयी

है। मुझे याद है कि यूरोपके एक नगरमें जब पैसेकी तंगी हुई तब ट्राम कम्पनी, वकीलों और डाक्टरोंकी आमदनी तो घट गयी, पर लोग पहलेसे अधिक तन्दुरुस्त हो गये। मशीनका गुण तो मुझे एक भी याद नहीं आता, पर दोषोंका तो पोथा तैयार हो सकता है।

पा०—आप जो यह सब कह रहे हैं यह मशीनकी मददसे ही तो छपेगा और लोगोंके पास पहुँचेगा। यह मशीनका गुण हुआ या दोष ?

सं०—यह तो विषसे विषको मारनेका दृष्टान्त हुआ। मशीन तो मरते-मरते भी यह कह जाती है कि मुझसे होशियार रहना और बचे रहना। मुझसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होने का। छापेके लाभकी बात कहिए तो यह लाभ भी उन्हींको होगा जिनपर मशीनोंका भूत सवार हो चुका है। इसलिए मूल बातको न भूलिए। मशीनें खराब चीज हैं, पहले इसे मनमें दृढ़ कर लीजिए, फिर धीरे-धीरे उन्हें छोड़ते चलिए। प्रकृतिने ऐसा सीधा रास्ता बनाया ही नहीं है कि हम जिस चीज-को चाहें वह तुरन्त हमें मिल जाय। मशीनोंको भी जब हम मित्रके बदले शत्रुरूपमें देखने लगेंगे तब अन्तमें वे बिदा हो ही जायँगी।

: २० :

उपसंहार

पा०—आपके विचारोंसे तो मुझे यह दिखाई देता है कि आप एक तीसरा दल खड़ा करना चाहते हैं। आप न गरम दलवाले हैं न नरम दलवाले।

सं०—यह आपका भ्रम है। मेरे मनमें तीसरा दल बनानेका बिलकुल ही विचार नहीं है। सबके विचार एकसे नहीं होते। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि नरम दलवालोंमें सब एक ही विचारके हैं। और जिसे सेवासे काम रखना है उसको दल कैसा? मैं तो जैसे नरम दलका सेवक हूँ वैसे ही गरम दलका। जहाँ मेरा मत उनसे न मिलेगा वहाँ विनयपूर्वक अपनी स्थिति उन्हें बता दूँगा और अपना काम किए जाऊँगा।

पा०—तब उन दोनों दलवालोंसे आप क्या कहेंगे?

सं०—गरम दलवालोंसे मैं कहूँगा कि आप हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, पर स्वराज्य माँगनेसे नहीं मिला करता। स्वराज्य तो हर एकको अपने लिए खुद ही लेना और भोगना चाहिए। दूसरे जो मेरे लिए प्राप्त करें वह तो स्वराज्य नहीं परराज्य है। इसलिए अगर आप यह मानते हों कि अंग्रेजोंको यहाँसे निकाल देनेसे स्वराज्य मिल जायगा तो यह ठीक नहीं है। आप सच्चा स्वराज्य चाहते हों तो वह तो जो मैं पहले बता चुका हूँ वही हो सकता है। उसे

आप गोला-बारूदसे कभी नहीं पा सकते। शस्त्रबलका भारतकी प्रकृतिसे मेल नहीं खाता। इसलिए हमें सत्याग्रहका ही भरोसा रखना होगा। इस भ्रमको तो अपने पास भी फटकने न देना चाहिए कि स्वराज्य पानेके लिए तोप-बन्दूककी जरूरत है।

नरम दलवालोंसे मैं कहूँगा कि केवल विनय-प्रार्थना करते रहना हमारे लिए जिल्लतकी बात है। ऐसा करके हम अपनी हीनता स्वीकार करते हैं। अंग्रेज़ोंसे सम्बन्ध रखे बिना हमारा चल ही नहीं सकता, यह कहना ईश्वरके सामने चोर बनने जैसा है। ईश्वरको छोड़कर और किसीके लिए तो यह कहना उचित ही न होगा कि उसके बिना हमारा चल नहीं सकता। पर साधारण दृष्टिसे भी यह कहना कि अंग्रेज़ोंके बिना तत्काल हमारा काम चल ही नहीं सकता, उन्हें घमण्डी बनाना है।

अंग्रेज़ बोरिया-बंधना सम्हालकर यहाँसे चले जायँ तो हिन्दुस्तान राँड हो जायगा, यह न समझिए। हाँ, यह हो सकता है कि जो लोग उनके दबावसे दबे बैठे हैं उनके चले जानेपर वे लड़ने लगें। पर ज्वालामुखीको दबा रखनेसे कोई लाभ नहीं, उसके तो फूट जानेमें ही हमारा कल्याण है। इसलिए अगर हम आपसमें लड़नेके लिए ही सिरजे गये हैं तो हम लड़ मरें। निर्बलकी रक्षाके बहाने तीसरेको उसमें दखल देनेकी जरूरत नहीं है। यह तो हमारे सत्यानाशका नुस्खा है। निर्बलको इस तरह बचाना तो उसे और निर्बल बना देना है। नरम दल-वालोंको इसपर भलीभाँति विचार करना चाहिए। जबतक इस सचाईको समझ न लें, स्वराज्य नहीं मिल सकता। मैं उन्हें एक अंग्रेज़ पादरीके कहे हुए इन शब्दोंकी याद दिलाऊँगा कि स्वराज्य माँगते हुए हमें अराजकता भी सहनी पड़े तो सह लेनी चाहिए, पर पराराज्यका सुशासन भी हमारी कंगाली है। फर्क इतना ही है कि भारतके स्वराज्यका अर्थ पादरीके स्वराज्यके अर्थसे भिन्न है। हमें यह जान लेना और दूसरोंको भी जता देना है कि हम काले-गोरे किसीका भी जुल्म या दबाव

नहीं चाहते।

यों बने तो नरम गरम दोनों मिल जायँ---उन्हें मिल जाना चाहिए। तब उन्हें एक दूसरेसे डरने, एक दूसरेका अविश्वास करनेकी जरूरत न रहेगी।

पा०—यह तो दोनों दलोंके लिए हुआ। पर अंग्रेज़ोंसे आप क्या कहेंगे ? उनसे मैं विनयपूर्वक कहूँगा कि आप हमारे राजा तो जरूर हैं। अपनी तलवारके बलपर हैं, या हमारी मर्जीसे, इसकी बहसमें पड़नेकी मुझे जरूरत नहीं। आप हमारे देशमें रहें इसपर भी मुझे कोई एतराज नहीं। पर आपको राजा होते हुए भी हमारा नौकर बनकर रहना होगा। आपका कहा मुझे नहीं, मेरा कहा आपको करना होगा। आजतक इस देशसे जो धन आप ले गये वह तो आपका हो गया। पर अब ऐसा कीजियेगा तो नहीं चलेगा। आप हिन्दुस्तानकी चौकीदारी करना चाहें तो यहाँ रह सकते हैं, पर तिजारत करके हमें लूटनेका लोभ आपको छोड़ देना होगा। आप जिस सभ्यताके हिमायती हैं हम उसे असभ्यता मानते हैं। अपनी सभ्यताको हम आपकी सभ्यतासे कहीं ऊँची मानते हैं। आप इस बातको समझ लें तो आपका लाभ है। पर न समझ सकें तो भी आपकी ही कहावतके अनुसार आपको हमारे देशमें हम जैसा ही बनकर रहना चाहिए। आपको कोई ऐसी बात न करनी चाहिए जो हमारे धर्मके विरुद्ध हो। हमारे शासक होनेके नाते आपपर फ़र्ज़ है कि हिन्दूके भावका आदरकर गायका और मुसलमानके भावका लिहाज़कर सूअरका मांस खाना छोड़ दें। दबे हुए होनेके कारण हम अबतक कुछ नहीं कह सके, पर इससे यह न समझिए कि आपके व्यवहारसे हमारे दिलको ठेस नहीं लगती। स्वार्थ या भयवश हम अबतक आपसे कुछ नहीं कह सके, पर अब कहना हमारे लिए फ़र्ज़ हो गया है। हम मानते हैं कि आपके कायम किये हुए स्कूल और अदालतें हमारे कामकी नहीं है। हम चाहते हैं कि उनके बदले हमारी पुरानी

पाठशालाएँ और पंचायती अदालतें फिर स्थापित हो जायँ।

"हिन्दुस्तानकी भाषा अंग्रेजी नहीं, हिन्दी (हिन्दुस्तानी) है। वह आपको सीखनी होगी। हम तो अपनी ही भाषामें आपके साथ व्यवहार रख सकते हैं।

"आप रेल और फौजपर बेहिसाब पैसा खर्च करते हैं, हमसे यह पानी की तरह बहाना नहीं देखा जाता। हमें इनकी कोई जरूरत नहीं जान पड़ती। रूसका डर आपको होगा, हमें नहीं है। वह आयेगा तो हम देख लेंगे। आप होंगे तो हम आर मिलकर निबट लेंगे। हमें इंगलैंड या यूरोपका बना कपड़ा नहीं चाहिए। हम इस देशमें पैदा होने और बननेवाली चीजोंसे काम चलायेंगे। आप एक आँख मैंचेस्टरपर और दूसरी हमपर रखें, यह नहीं चल सकता। आप अपना और हमारा स्वार्थ एक मानकर चलें तभी हमारा आपका साथ निभ सकता है।

"ये बातें हम इसलिए नहीं कह रहे हैं कि हम आपको तुच्छ समझते हैं। आपके पास तोप-बन्दूककी ताकत है। विशाल जंगी बेड़ा है। उसका मुकाबला हम वैसे ही बलसे नहीं कर सकते। पर ऊपर जो बातें कही गई हैं वे आपको मंजूर न हों तो हमारी आपकी कुट्टी है। आपकी मरजीमें आये, आप और आपके किये हो सके तो आप हमारी गरदनें काट दीजिए। हमें तोपसे उड़ा दीजिए। पर जो बात हमें पसन्द नहीं है उसके करनेमें हम आपकी मदद नहीं कर सकते और हमारी मददके बिना आप कदम नहीं उठा सकते।

हो सकता है, अपनी शक्तिके मदमें आप हमारी बातको हँसीमें उड़ा दें। आपकी हँसी बेजा है, यह आपको एक-दो दिनमें तो शायद हम नहीं दिखा सकेंगे, पर हममें दम होगा तो कुछ ही दिनोंमें आपको मालूम हो जायगा कि आपका मद व्यर्थ है और आपका हँसना विपरीत बुद्धिकी निशानी है।

हम तो यह मानते हैं कि स्वभावतः आप भी एक धार्मिक राष्ट्रके अंश हैं।

हम तो धर्मस्थानमें बसते ही हैं। आपका और हमारा साथ कैसे हुआ। यह सोचना बेकार है, पर हम दोनों इस सम्बन्धका सदुपयोग कर सकते हैं।

हिन्दुस्तानमें आनेवाले आप अंग्रेज़ अंग्रेज़जातिके सच्चे नमूने नहीं हैं। वैसे ही आधे अंग्रेज़ बन जानेवाले हम हिन्दुस्तानी भी भारतीय जनता के सच्चे नमूने नहीं कहे जा सकते। ब्रिटिश-जनताको अगर आपकी सब करतूतोंका पता लग जाय तो वह आपके कार्यका विरोध करे। हिन्दुस्तानकी जनताने आपके साथ थोड़ा ही लगाव रखा है। आप अपनी सभ्यताको, जो वस्तुतः असभ्यता है, छोड़कर अपने धर्म-ग्रन्थोंके पन्ने उलटेंगे तो आप देखेंगे कि हमारी माँगें वाजिब हैं। उनको पूरी करके ही आप हिन्दुस्तानमें रह सकते हैं। आप इस तरह यहाँ रहें तो आपसे हमें जो कितनी ही बातें सीखनी हैं उन्हें हम सीखेंगे और आपको भी हमसे जो बहुत-कुछ सीखना है वह आप सीख लेंगे। पर यह तभी होगा जब हमारे सम्बन्ध-की जड़ धर्मकी भूमिमें रोपी जाय।

पा०—राष्ट्रसे आप क्या कहेंगे?

सं०—राष्ट्र है कौन?

पा०—इस समय तो आप जिस अर्थमें इस शब्दका व्यवहार करते हैं वही राष्ट्र है। अर्थात् वे लोग जिनपर यूरोपकी सभ्यता का रंग चढ़ गया है और जो स्वराज्यकी पुकार मचा रहे हैं।

सं०—इस राष्ट्र यानी इन लोगोंसे मैं कहूँगा कि जिन हिन्दुस्तानियोंपर (स्वराज्यका) सच्चा नशा चढ़ा होगा वही अंग्रेज़ोंसे ऊपरके ढंगकी बातें कह सकेंगे। उनके रोबमें नहीं आयेंगे। सच्चा नशा या मस्ती उसीपर चढ़ सकती है जो ज्ञानपूर्वक इस बातको मानते हों कि हिन्दुस्तानकी सभ्यता दुनियामें सर्वश्रेष्ठ है और यूरोपकी सभ्यता महज तीन दिनका तमाशा है। ऐसी सभ्यताएँ तो कितनी

ही आयी-गईं, कितनी ही आती-जाती रहेंगी। सच्चा नशा उन्हींको होगा जो आत्म-बलका अनुभव करके शरीरबलसे न दबते हुए निर्भय रहें, तोप-बन्दूककी ताकतसे काम लेनेकी बात सपनेमें भी न सोचें। सच्चा नशा उन्हीं हिन्दुस्तानियोंको होगा जो देशकी वर्तमान दयनीय दशासे अति आकुल हैं और जो जहरका प्याला पहले ही पी चुके होंगे।

ऐसा हिन्दुस्तानी कोई एक भी होगा तो वह अंग्रेज़ोंसे पूर्वोक्त प्रकारकी बातें कहेगा और अंग्रेज़ोंको उसकी बातें सुननी होंगी।

ऊपर दी हुई माँगें वास्तवमें माँगें नहीं हैं, बल्कि भारतीयोंके मनकी दशाका निदर्शन हैं। माँगा नहीं मिलता, जो लेना है उसे लेना होगा। लेनेके लिए बल चाहिए और यह बल उसीमें होगा—

१. जो अंग्रेज़ीका उपयोग तभी करेगा जब उसके बिना काम ही न चले।

२. जो वकील होगा तो वकालत छोड़ देगा और घरमें चरखा चलाकर करघेपर कपड़ा बुनेगा।

३. जो वकील होकर अपने ज्ञानका उपयोग केवल लोगोंको समझाने और अंग्रेजोंकी आँख खोलनेमें करेगा।

४. जो वकील होकर मुद्दई-मुद्दालेहके झगड़ेमें न पड़ेगा बल्कि अदालतको त्याग देगा और अपना अनुभव बताकर औरोंको भी उन्हें छोड़नेके लिए समझायेगा।

५. जो वकील होकर जैसे वकालत छोड़ेगा वैसे ही जजीको भी लात मारेगा।

६. जो डाक्टर होकर अपना धन्धा छोड़ देगा और यह समझेगा कि लोगोंकी देह का इलाज करनेसे उनकी आत्मा का इलाज कर उसे नीरोग बनाना ज्यादा जरूरी है।

७. जो डाक्टर होकर यह समझेगा कि वह खुद चाहे जिस धर्मको मानता हो, पर अंग्रेजी चिकित्सा-विद्यालयोंमें जीवित प्राणियोंका अंगच्छेद करनेमें जिस हत्यारेपनसे काम लिया जाता है उस हत्यारेपनसे शरीरको नीरोग करनेसे अच्छा है कि वह रोगी ही बना रहे।

८. जो डाक्टर होकर भी खुद चरखा कातेगा और बीमारोंको उनकी बीमारी-का असली कारण बताकर उसे दूर करनेकी सलाह देगा, पर निकम्मी दवाएँ देकर उन्हें कुपथ्य करनेका बढ़ावा न देगा। जो यह समझेगा कि निकम्मी दवा न लेकर कोई रोगी मर जाय तो इससे दुनिया राँड नहीं हो जायगी, और उस आदमीपर तो यह सच्ची दया करना होगा।

९. जो मालदार होकर अपने पैसेकी चिन्ता न करके जो मनमें होगा वही बोलेगा और सरकारी अफसरोंकी परवाह नहीं करेगा।

१०. जो मालदार होकर अपना पैसा चरखे-करघेकी स्थापनामें लगायेगा और खुद केवल स्वदेशी वस्त्र व्यवहार कर दूसरोंको उसके व्यवहारका प्रोत्साहन देगा।

यह बल हममें तभी होगा—

११. जब सब हिन्दुस्तानी यह समझेंगे कि यह समय पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त और शोक मनानेका है।

१२. जब सब लोग इस बातको समझेंगे कि अंग्रेजोंको दोष देना व्यर्थ है। वे हमारे दोषसे यहाँ आये और हमारे ही दोषसे यहाँ बने हैं, और जब हमारी खराबियाँ दूर हो जायँगी तब रास्ता लेंगे या बदल जायँगे।

१३. जब सभी यह समझने लगेंगे कि शोककी दशामें मौज-शौक नहीं हो सकता और जबतक हमें सुख-चैन नहीं है तबतक यही अच्छा है कि हम जेलमें या

देशसे निर्वासित रहें।

१४. जब सब हिन्दुस्तानी यह समझ लेंगे कि यह खयाल शुद्ध मोह है कि लोगोंको समझाते रहनेके लिए हमें जेल न जानेकी सावधानी रखनी चाहिए।

१५. जब सब लोग यह समझ लेंगे कि कहनेसे करनेका असर कहीं ज्यादा होता है और जो हमारे मनमें है उसे बिडर होकर कहना और उसका जो नतीजा मिले उसे सह लेना चाहिए। तभी हमा रे कहनेका असर दूसरोंपर पड़ सकता है।

१६. जब सभी हिन्दुस्तानी यह समझने लगेंगे कि हम कष्ट सहकर ही अपनी बेड़ी काट सकते हैं।

१७. जब सब हिन्दुस्तानी यह समझेंगे कि अंग्रेजोंकी सभ्यताको बढ़ावा देकर हमने जो पाप किया है उसके निवारणके लिए हमें आजीवन कालेपानीमें रहना पड़े तो यह प्रायश्चित्त तनिक भी अधिक न होगा।

१८. जब सब हिन्दुस्तानी यह समझ लेंगे कि कोई भी राष्ट्र बिना कष्ट सहे ऊपर नहीं उठ सकता; यहाँतक कि हरबे-हथियारकी लड़ाईमें भी सच्ची कसौटी तो कष्टसहन ही है, दूसरोंको मारना नहीं। यही बात सत्याग्रहके विषयमें भी है।

१९. जब सब हिन्दुस्तानी यह समझ लेंगे कि "दूसरे करेंगे तो हम भी करेंगे" यह कहना न करनेका बहाना है। हमें जो ठीक जान पड़ता है वह हम करेंगे और दूसरोंको जब जान पड़ेगा तब वे उसे करेंगे। यही करने का रास्ता है। मुझे रुचनेवाला भोजन मेरे सामने आये तो उसे ग्रहण करनेमें मैं दूसरोंकी राह नहीं देखा करता। ऊपर बताये हुए प्रकार से प्रयत्न करना और दुःख उठाना स्वादिष्ट भोजन करने जैसा ही है। विवश होकर करना और कष्ट सहना बेगार है।

पा०—यह तो बहुत लम्बा-चौड़ा आदेश है। सब लोग कब यह सब कर सकेंगे और कब इसका अन्त आयेगा?

सं०—आप फिर भूले। मुझे और आपको सबसे क्या मतलब ? आप अपनी फ़िक्र कीजिये। मैं अपनी कर लूँगा। यह बात समझी तो स्वार्थकी जाती है, पर है परमार्थकी। मैं पहले अपने को सुधार लूँगा तभी दूसरोंको सुधार सकूँगा। अपना कर्तव्य मुझे करना चाहिए। इसीमें सारी कार्यसिद्धि है।

आपसे बिदा लेनेसे पहले मैं इन बातों को दुहरा देनेकी इजाज़त चाहता हूँ—

१. सच्चा स्वराज्य अपने मनपर राज्य करना है।

२. उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल अथवा प्रेमबल है।

३. इस बलसे काम लेनेके लिए सोलह आने स्वदेशी बनना ज़रूरी है।

४. हम जो कुछ करना चाहते हैं वह इसलिए नहीं कि अंग्रेजोंसे हमें द्वेष है, या हम उन्हें सजा देना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि वह करना हमारा कर्तव्य है। अंग्रेज अगर नमक-कर उठा लें, हमारा जो धन ढो ले गये हैं वह लौटा दें, हिन्दुस्तानियोंको बड़े-बड़े ओहदे देने लगें, गोरी फौजको वापस बुला लें, तो भी हम उनके कारखानोंके बने कपड़े पहनने, अंग्रेजी भाषाको काममें लाने और उनके उद्योग-धन्धोंका उपयोग करने लगें, यह नहीं होनेका। यह बात समझ लेनी चाहिए कि ये बातें हमारे लिए अकर्तव्य हैं, इसलिए हमें नहीं करनी हैं।

अंग्रेजोंसे मुझे कोई द्वेष नहीं, पर उनकी सभ्यतासे अवश्य है। और जो कुछ मैंने कहा है वह उसीके खिलाफ़ है।

मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हमने स्वराज्यका नाम तो याद कर लिया है, पर उसका स्वरूप, सच्चा अर्थ नहीं समझा है। मैंने उसे जैसा समझा है वैसा ही समझानेका यत्न किया है। और मेरा मन इस बातकी गवाही देता है कि ऐसा स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए मेरी यह देह समर्पित है।

वन्दे मातरम्

परिशिष्ट

'आर्यनपाथ' का 'हिन्द-स्वराज्य अंक'

['आर्यनपाथ' (बम्बई) के 'हिन्द-स्वराज्य-अंक' के विषयमें मैंने 'हरिजन' में जो लेख लिखा था, 'हिन्द-स्वराज्य' के इस नये संस्करणमें उसे प्रस्तावनारूपमें उद्धृत कर देना अनुपयुक्त न होगा। यद्यपि 'हिन्द-स्वराज्य' के पहले संस्करणमें गांधीजीने जो विचार प्रकट किये हैं वे अपने मूल रूपमें ज्यों-के-त्यों हैं, पर उनका आवश्यक विकास तो होता ही रहा है। नीचे मेरा जो लेख दिया जा रहा है उससे पाठकोंको इस विकासका कुछ परिचय मिल जायगा।

वर्धा, ११-१२-३८ म० ह० देसाई]

बंबईके अंग्रेजी मासिक 'आर्यनपाथ' ने 'हिन्द-स्वराज्य-अंक' (स्पेशल हिन्द-स्वराज्य नंबर) के नामसे अपना विशेषांक निकाला है। इस अंककी कल्पना अपूर्व है और उसे कार्यरूप देनेमें पूरी सफलता भी मिली है। इस विशेषांकके प्रकाशनका श्रेय मुख्यतः हमारी प्रतिभाशालिनी बहन श्रीमती सोफिया वाडियाको है। उन्होंने बड़ी लगनके साथ इसे प्रस्तुत करनेके लिए श्रम किया है। उन्होंने 'हिन्द-स्वराज्य' (इंडियन होमरूल) की प्रतियाँ विदेशोंमें बहुसंख्यक मित्रोंके पास भेजीं और उनमेंसे प्रमुख जनोंसे पुस्तकके विषयमें अपने विचार लिख भेजने का अनुरोध किया। वह खुद उसके विषयमें कई विशेष लेख लिख चुकी हैं जिनमें

यह दिखलाया है कि यह पुस्तक भावी भारतके लिए आशारूप है। पर वह यूरोपके मनीषियों और लेखकोंसे यह कहलाना चाहती थीं कि वह यूरोप को भी, जिस नैतिक अराजकताके गढ़ेमें आज वह गिरा हुआ है उससे निकालनेकी शक्ति रखती है। इसीलिए उन्होंने यह विशेषांक निकलवानेकी बात सोची। इसका फल बहुत ही सुन्दर रहा।

इस विशेषांकमें प्रोफेसर सॉडी, जी. डी. एच. कोल, सी. डी. डिलाइल बर्न्स, जान मिडिलटन मरे, जे. डी. बेरेसफोर्ड, ह्यू फासेट, क्लाड हाउटन, जेराल्ड हर्ड और कुमारी आइरीन राथबोन जैसे मनीषियोंके लेख दिये गये हैं। इनमेंसे कुछ अवश्य ही प्रसिद्ध शान्तिवादी और समाजवादी हैं। शान्तिवाद और समाजवादके विरोधियोंके लेख भी इसमें होते तो यह अंक कितना अधिक सुन्दर होता! लेखोंका क्रम ऐसा रखा गया है कि "शुरूके लेखोंमें जो प्रतिकूल आलोचनाएँ की गयीं और एतराज़ उठाये गये हैं, पीछेके लेखोंमें उनमेंसे अधिकांशका जवाब दे दिया गया है।" पर एक-दो एतराज़ ऐसे हैं जो लगभग सभी लेखकोंने किये हैं, और उनपर यहाँ विचार कर लेना उचित होगा। उनकी कुछ बातोंको तो तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिए। मिसालके तौरपर, प्रोफेसर सॉडीने लिखा है कि मैं हालमें ही भारतका भ्रमण करके लौटा हूँ, और देशके बाह्य जीवनमें मैंने ऐसी कोई चीज नहीं देखी जो यह बताये कि पुस्तकमें प्रतिपादित सिद्धान्त देशवासियोंकी विचारधारापर कुछ अधिक असर डाल सके हैं। यह बात सोलह आने सही है! श्री जी. डी. एच. कोलकी यह उक्ति भी उतनी ही सच है कि शुद्ध वैयक्तिक अर्थमें गांधीजी स्वराज्यके उतने पास पहुँच गये हैं जितने पास कोई आदमी पहुँच सकता है, पर दूसरी समस्या को वह अबतक इस रूपमें हल नहीं कर पाये हैं जिससे उन्हें सन्तोष हो सके। वह समस्या है—सहयोगका ऐसा आधार कैसे प्राप्त किया जाय

जिससे मनुष्य मनुष्यके बीच, अकेले काम करने और दूसरोंको अपने बुद्धि-विवेक-के अनुसार काम करनेमें सहायता देनेके बीच जो अन्तर है वह मिट सके। इसके लिए उनके साथ मिलकर और उनसा होकर काम करना होता है—एक साथ दो व्यक्तित्व धारण करने पड़ते हैं–अपना और किसी औरका भी। दूसरेका व्यक्तित्व—दूसरेकी अपनाई हुई दृष्टि निरीक्षण, समीक्षा और मूल्य आँकनेका यत्न कर सकती है और उसे करना चाहिए। जान मिडिलटन मरेका भी कहना है कि "अहिंसा जब राजनीतिक दबाव डालनेकी एक कार्यविधि मात्रके रूपमें काममें लायी जाती है तब उसकी शक्ति बहुत जल्दी समाप्त हो जाती है।" तब यह प्रश्न उपस्थित होता है—'क्या यह अहिंसा सच्ची अहिंसा है?'

पर यह सारी क्रिया अनन्त विकासकी है। साध्यकी सिद्धिके लिए श्रम करते हुए मनुष्य साधनकी संपूर्णताके लिए भी यत्न करता जाता है। अहिंसा और प्रेमके सिद्धान्तका बुद्ध भगवान् और हज़रत ईसा आजसे हजारों साल पहले प्रतिपादन कर चुके हैं। इन लंबी सदियोंके बीच बहुतेरे व्यष्टिरूपमें, छोटे सुनिश्चित प्रश्नोंपर इस सिद्धान्तका प्रयोग कर सफल हो चुके हैं। जैसा कि जेराल्ड हर्डने कहा है, और जैसा कि सब मानते हैं—"गांधीजीके प्रयोगमें जो सारी दुनिया दिलचस्पी ले रही है और युगोंतक लेती रहेगी उसका कारण यह है कि उन्होंने इस कार्यविधि-को बड़े पैमाने पर अथवा समूचे राष्ट्रके लिए काममें लानेका यत्न किया।" इस प्रयोगकी कठिनाइयाँ स्पष्ट हैं। पर गांधीजीको विश्वास है कि उन्हें पार कर लेना अनहोनी बात नहीं है। १९२१ में यह प्रयोग अशक्य दिखाई दिया और छोड़ देना पड़ा, पर जो उस समय असाध्य था वह १९३० में साध्य हो गया। आज भी अकसर यह सवाल हमारे सामने आता है—'अहिंसात्मक साधन क्या हैं?' इस शब्दका अर्थ और भाव सारी दुनियाके लिए एक हो जाय, इसके लिए अहिंसा-

पर लम्बे अरसेतक अमल होना जरूरी होगा । पर इसका साधन अधिकाधिक आत्मशुद्धि है । पश्चिमके विचारक अक्सर इस बातको भूल जाते हैं कि अहिंसा-की बुनियादी शर्त प्रेम है और तन-मनकी ऐसी शुद्धिके बिना जिसमें मलका लेश न हो शुद्ध, निःस्वार्थ प्रेम उपज नहीं सकता ।

मशीनों और सभ्यतापर आक्रमण

पुस्तकको सराहनेवाली अन्य सभी आलोचनाओंकी एक सामान्य विशेषता यह है कि सब आलोचकोंकी रायमें गांधीजीने कल-पुरजोंकी जो निन्दा की है वह अनुचित और अकारण है । मिडिलटन मरे कहते हैं—"अपनी मानस-दृष्टिकी तीव्रतामें वह (गांधीजी) यह भूल जाते हैं कि जिस चरखेको वह इतना प्यार करते हैं वह भी तो कल ही है, और प्रकृतिकी बनायी हुई वस्तु नहीं है । उनके सिद्धान्तके अनुसार उसे भी विदा कर देना चाहिए ।" प्रोफेसर डेलाइल बर्न्स फरमाते हैं—"यह मूल गत सिद्धान्त-विषयक भ्रम है । इसका अर्थ यह है कि जिस किसी भी औजारका दुरुपयोग हो सकता हो वह नीतिकी दृष्टिसे बुरा है । पर चरखा भी मशीन है, और नाकपर चढ़ा हुआ चश्मा भी 'शारीरिक दृष्टि' की सहायता करनेवाला यन्त्र ही है । हल कल है और कुएँसे पानी निकालने के पुराने-से पुराने साधन भी मनुष्यके मानव-जीवन सुधारनेके शायद दस हजार सालके सतत प्रयत्नके पिछले अवशेष होंगे ।......यन्त्र मात्रका दुरुपयोग हो सकता है । पर ऐसा है तो बुराई यन्त्रमें नहीं, मनुष्य में है जो उसका दुरुपयोग करता है ।"

मुझे स्वीकार करना होगा कि 'मानसदृष्टि' की तीव्रतामें गांधीजीने मशीनोंके बारेमें जरा कुछ अनगढ़ शब्दोंसे काम लिया है, और अगर वह पुस्तकको दुहरायें तो खुद उन्हें बदल दें । कारण यह कि मुझे विश्वास है कि जिन उक्तियोंको मैंने यहाँ उद्धृत किया है गांधीजी उन सबको स्वीकार कर लेंगे और उन्होंने यन्त्रों-

पर उन नैतिक गुण-दोषोंका कभी आरोप नहीं किया है जो उनसे काम लेनेवाले मनुष्योंमें होते हैं। उदाहरणार्थ, १६२४ में इस विषयमें उन्होंने जो शब्द कहे थे वे ऊपर जिन दो लेखकोंके वचन उद्धृत किये गये हैं उनकी याद दिलाते हैं। उस वर्ष दिल्लीमें हुए एक संवादको मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ। "क्या आप यन्त्रमात्रके विरोधी हैं?" इस प्रश्नका उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा—

"*यह कैसे हो सकता है, जब मैं जानता हूँ कि मेरा यह शरीर भी एक निहायत नाजुक कल है। चरखा भी कल है और नन्हा-सा खरका भी। मैं जिस चीज़का विरोध करता हूँ वह मशीन नहीं, मशीनका खब्त है। आज लोगोंको उन मशीनोंका खब्त है जो आदमीकी मेहनत बचानेवाली कही जाती हैं। वे श्रमकी इतनी 'बचत' कर डालती हैं कि हजारों आदमी बेकार हो जाते और सड़कोंपर पड़कर भूखों मरने लगते हैं। समय और श्रमकी बचत मैं भी करना चाहता हूँ, पर मानव-जातिके एक छोटेसे टुकड़ेके लिए नहीं बल्कि मनुष्य मात्रके लिए। मैं चाहता हूँ कि पैसा सब जगहसे खिंचकर मुट्ठीभर आदमियोंके हाथोंमें न आ जाय, बल्कि सबके पास रहे। आज तो मशीनोंका काम महज यह हो रहा है कि गिनतीके थोड़ेसे आदमियोंको लाखों-सैकड़ोंकी पीठपर सवारी गाँठनेमें सहायक हों। इस प्रवृत्तिकी प्रेरणा करनेवाली वृत्ति मनुष्यकी मेहनत बचानेका लोकोपकार-भाव नहीं है बल्कि पैसेका लोभ है। इसी वस्तुस्थितिके विरुद्ध मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर लड़ रहा हूँ।............ विचारनेकी मुख्य वस्तु मनुष्य—उसका हित है। कलोंकी प्रवृत्ति यह न होनी चाहिए कि उसके अंगोंको बेकार बना दे। मैं कुछ कलोंको अपवादरूप मान सकता हूँ। मिसालके लिए सिंगरकी सिलाईकी मशीनको ले लीजिये। वह उन थोड़ीसी सच्ची उपयोगी वस्तुओंमें है जिन्हें दुनिया अबतक ईजाद कर सकी है। उसके आविष्कारके पीछे एक सुन्दर प्रेमकहानी भी है।*

सिंगरने देखा कि उसकी पत्नीको सीने और बखिया करने का जी उबानेवाला काम करना पड़ता है। पत्नीके प्रति उसके प्रेमने इस अनावश्यक श्रमसे उसे बचानेके लिए, यह कल बनानेकी प्रेरणा की। यह कल बनाकर उसने अपनी पत्नीकी ही मेहनत नहीं बचायी, उन सभी लोगोंको इस पित्तामार श्रमसे बचा लिया जो उसे खरीद सकते हैं।"

"पर इस सिलाई की मशीनको बनानेके लिए तो एक खासा बड़ा कार-खाना होना चाहिए और उसमें बिजली आदिकी शक्तिसे चलनेवाली साधारण प्रकारकी मशीनें भी लगानी होंगी ?" प्रश्नकर्त्ता (श्रीरामचन्द्र) ने पूछा।

गांधीजीने जवाब दिया—"बेशक। पर मैं इतना समाजवादी अवश्य हूँ कि यह कारखाना राष्ट्रकी सम्पत्ति हो, राज्यके नियन्त्रणमें चलाया जाय, यह कह सकूँ।........उसकी स्थापनाका उद्देश्य मनुष्यकी मेहनत बचाना होना चाहिए, लखपती बननेका लोभ उसका प्रेरक हेतु न होना चाहिए। मिसालके लिए, टेढ़ा हो जानेवाले तकलेको सीधा कर देनेकी कलका मैं सदा स्वागत करूँगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि लुहार तकले बनाना बन्द कर देंगे। वे तो बदस्तूर तकले बनाते रहेंगे, मगर तकलेके बिगड़नेपर हर कातनेवालेके पास एक कल होगी जो उसे सीधा कर देगी अतः लोभके स्थानपर प्रेमको बिठा दीजिये और सब-कुछ ठीक हो जायगा।"

"पर जब आप सिंगरकी सिलाईकी मशीन और अपने तकलेको अपवाद मान सकते हैं तो यह अपवादोंका सिलसिला कहाँ खत्म होगा ?" प्रश्नकर्त्ताने पूछा।

"वहीं जहाँ वे व्यक्तिको सहायता करना बन्द करके उसके व्यक्तित्वपर आक्र-मण करना आरम्भ करते हैं। मशीनको इसकी इजाजत न होनी चाहिए कि मनुष्य

के अंगों—इन्द्रियोंको बेकार बना दे ?"

"पर आदर्शरूपमें क्या आप यन्त्रमात्रका त्याग न करेंगे ? जब आप सिलाई की मशीनको अपवादरूप बनाते हैं तो आपको मोटर, बाइसिकिल इत्यादिको भी अपवाद मानना होगा ?"

गांधीजीने जवाब दिया—"नहीं, मैं ऐसा नहीं करता। इसका कारण यह है कि वे मनुष्यकी किसी बुनियादी आवश्यकताकी पूर्ति नहीं करतीं। मोटरकी चालसे फासलेको तै करना मनुष्यकी कोई मौलिक आवश्यकता नहीं है, पर सूई ऐसी चीज है जिसकी मनुष्यके जीवनमें अनिवार्य आवश्यकता है, जो उसकी बुनियादी जरूरत है।"

उन्होंने और कहा—"पर आदर्शरूपमें तो मैं यन्त्रमात्रको त्याज्य मानूँगा। मैं अपने इस शरीरका भी जो मुक्तिकी प्राप्तिमें सहायक नहीं है त्याग करना पसन्द करूँगा और आत्माकी पूर्ण मुक्तिके लिए प्रयत्न करूँगा। इस दृष्टिसे मैं हर एक कलका त्याग करूँगा। पर कलें बनी रहेंगी, क्योंकि हमारी देहकी तरह वे अनिवार्य हैं। जैसा कि मैं आपको बता चुका हूँ, शरीर स्वयं शुद्धतम यन्त्र है, पर आत्माके ऊँचीसे ऊँची उड़ान भरनेमें वह बाधारूप हो तो उसका त्याग करना ही होगा।"

मैं नहीं समझता कि किसी भी आलोचकका इस स्थितिसे सिद्धांतगत मतभेद हो सकता है। यन्त्र भी देहकी तरह तभी और वहींतक उपयोगी है जब और जहाँ-तक वह आत्माके बाढ़-विकासमें सहायक हो।

इसी तरह श्री जी. डी. एच. कोल "पश्चिमी सभ्यता मानव-आत्माका शत्रु बननेको विवश है" इस कथनका खंडन करते हुए कहते हैं—"मैं मानता हूँ कि स्पेन और अबीसीनियामें हुए लोमहर्षण कांड, हम लोगोंके सिरपर भयकी तलवार-का सदा लटकते रहना, वसुधाको धन-धान्यसे भर देनेकी शक्ति रहते हुए भी

करोड़ों जनोंको अन्न-वस्त्रके लाले पड़े रहना, ये सब हमारी पश्चिमी सभ्यताके दोष हैं, महादोष हैं। पर ये उसका स्वभाव नहीं हैं।.........मैं यह नहीं कहता कि हम अपनी इस सभ्यताको सुधार लेंगे, पर मैं यह नहीं मानता कि उसका सुधार हो ही नहीं सकता। मैं यह नहीं मानता कि मानव आत्माके लिए जो कुछ आवश्यक है उस सबका अस्वीकार इस सभ्यताका आधार है।" बिलकुल सही है। गांधीजीने इस सभ्यताके जो दोष बताये हैं वे उसके स्वभावसिद्ध दोष नहीं बल्कि उसकी प्रवृत्तिके दोष हैं और इस पुस्तकमें गांधीजीका उद्देश्य यह दिखाना था कि भारतीय सभ्यताकी प्रवृत्तियाँ पश्चिमी सभ्यताकी प्रवृत्तियोंसे कितनी भिन्न है। श्री कोल के इस मतको वे सोलहों आने स्वीकार कर लेंगे कि पश्चिमी सभ्यताको सुधारना अनहोनी बात नहीं है। यह भी मान लेंगे कि 'पश्चिमको पश्चिमके ढंगका' और ऐसे नेताओंके कल्पनानुसार रचित स्वराज्य मिलना चाहिए जो गांधीजीकी तरह "अपने आपको जीत चुके हों, पर जिनका आत्मजय पश्चिमके ढंगका हो, गांधीजी या भारतके प्रकारका न हो।"

सिद्धान्तकी मर्यादा

श्री जी. डी. एच. कोलने नीचे लिखा टेढ़ा सवाल पूछा है—"जब जर्मन और इटालियन उड़ाके स्पेनकी जनताका संहार कर रहे हैं, जब जापानी उड़ाके चीनी नगरोंमें हजारोंको मौतके घाट उतार रहे हैं, जब जर्मन सेना आस्ट्रियामें घुस गयी है और चेकोस्लोवाकियापर धावा बोलनेको तैयार खड़ी है, जब पैशाचिक बम-वर्षाके द्वारा अबीसीनिया घुटने टेकनेको लाचार किया गया हो, ऐसे वक्त भी क्या हिंसाका अवलम्बन वैसा ही अधर्म है ? अभी दो-ढाई बरस पहलेतक मैं आपको युद्ध और प्राणहारिणी हिंसाका प्रत्येक परिस्थितिमें विरोध करनेवाला मानता था। पर आज, युद्धसे घृणा करते हुए भी, इन पैशाचिक कार्योंको रोकनेके

लिए मैं युद्धकी जोखिम लेनेको तैयार हूँ।" उनके अन्तरमें कैसा उग्र मन्थन चल रहा है यह उनके आगे के वाक्योंसे प्रकट होता है —"मैं युद्धका जोखिम लेनेको तैयार हूँ, फिर भी 'मेरी दूसरी आत्मा' आदमीकी जान लेनेकी कल्पना मात्रसे काँप उठती है। अपने बारेमें तो कह सकता हूँ कि मारनेकी बनिस्बत मरनेके लिए तैयार हो जाना मेरे लिए कहीं आसान है। पर कुछ परिस्थितियोंमें मरनेके बजाय विरोधीको मारनेकी कोशिश करना क्या मेरा कर्तव्य नहीं हो सकता? गांधीजी कह सकते हैं कि जिस आदमीने वैयक्तिक स्वराज्य प्राप्त कर लिया है उसके सामने ऐसा धर्मसंकट आ ही नहीं सकता? मैं ऐसा वैयक्तिक स्वराज्य पा लेनेका दावा नहीं करता। पर मुझे इसका इतमीनान नहीं होता कि वह मुझे मिल गया होता तो भी पश्चिमी यूरोपमें आजकी स्थितिमें यह उलझन मेरे सामने इससे कुछ भी कम विकट रूपमें उपस्थित होती।"

श्री कोलने जैसे बताये हैं वैसे अवसर मनुष्यकी श्रद्धाकी परीक्षा करते हैं, पर इसका उत्तर गांधीजी अनेक बार दे चुके हैं। यद्यपि वह अपना वैयक्तिक स्वराज्य पूर्ण रूपमें प्राप्त नहीं कर सके हैं, इसलिए जबतक उनके देशबन्धु उससे वंचित हैं तबतक उनका स्वराज्य उनकी दृष्टिमें अधूरा ही रहेगा, पर श्रद्धा उनका जीवन है और अहिंसामें उनकी श्रद्धा इटली या जापानके किये हुए बर्बर हत्याकाण्डोंकी चर्चा मात्रसे डगमगाने नहीं लगती। कारण यह कि हिंसासे हिंसाके परिणाम ही उपजते हैं और एक बार आप इस रास्ते पर लगे कि फिर उसका अन्त नहीं आता। फिलिप मम्फर्डने चीनका प्रश्न लेकर लड़नेका आग्रह करनेवाले एक चीनी मित्रको 'वार रेज़िस्टर' (युद्ध-विरोधी) में यों जवाब दिया है—

"आपकी दुश्मन जापानकी सरकार है, जापानके किसान और सैनिक नहीं। ये अभागे और अशिक्षित जन तो यह भी नहीं जानते कि उन्हें किसलिए लड़ने-

का हुक्म दिया जा रहा है। फिर भी आपने अपने देशको बचानेके साधारण उपायोंसे ही काम लिया तो आपको इन निरपराध जनोंको ही, जो आपके असली दुश्मन नहीं हैं कतल करना पड़ेगा। हाँ; अगर चीन उस अहिंसात्मक रणरीतिको, जिसे गांधीजी भारतमें काममें ला रहे हैं, अपनाये और उससे अपनी स्वाधीनताकी रक्षाका यत्न करे—और यह युद्धप्रणाली उसके अपने महान् धर्मोपदेशकोंके उपदेशोंके कहीं अधिक अनुकूल है—तो मैं यह कहनेका साहस कर सकता हूँ कि पश्चिमके शस्त्रयुद्धके प्रकारोंकी नकल करनेसे वह जितनी सफलताकी आशा रख सकता है उससे कहीं अधिक सफलता प्राप्त कर सकेगा।' ' 'निश्चय ही यह बात सारी मानव जातिके लिए शिक्षारूप है कि चीनवासी जो दुनियामें सबसे अधिक शान्तिप्रिय जाति हैं, किसी भी लड़ाकू जातिकी अपेक्षा अधिक लम्बे कालतक अपनी और अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सके हैं। यह न समझिये कि जो वीर चीनी अपने देशकी रक्षाके लिए आज जूझ रहे हैं उनके लिए हमारे दिलमें इज्जत नहीं। हम उनके आत्मबलिदान का सम्मान करते हैं और यह मानते हैं कि वे जिन सिद्धांतोंमें श्रद्धा रखते हैं वे हमारे सिद्धांतोंसे भिन्न हैं। फिर भी हम मानते हैं कि हिंसा हर हालमें बुरी है और उससे कोई भलाई पैदा हो नहीं सकती। शांतिवाद या अहिंसा आपको सारे कष्टोंसे नहीं बचा सकती, पर मेरा विश्वास है कि अंतमें भावी विजेताका सामना करनेमें अपनी सारी सेना और अस्त्र-शस्त्रों की अपेक्षा वह अधिक प्रभावकर सिद्ध होगा। सबसे महत्त्वकी बात यह है कि आपकी जातिके आदर्शोंको वह जीवित रखेगा।"

कुमारी आइरीन राथबोन भी ऐसा ही प्रश्न करती हैं—"दुनियामें ऐसा कौन आदमी है—वह साधारण जन हो या सन्त पुरुष—जो जालिम की मरजीके सामने सिर झुकाने और अपनी अन्तरात्माको अनसुनी करके उनकी जान बचायी

जा सकती हो तो कुधर्मु है बालक-बालिकाओंका बध होने देगा ? गाँधीजी इस प्रश्नका उत्तर नहीं देते। वह इसे उठातेतक नहीं।""ईसाका मत इस विषयमें अधिक स्पष्ट है।"""उनके शब्द ये हैं—पर जो कोई मुझमें आस्था रखनेवाले इन नन्हें बच्चोंको पीड़ा पहुँचाये, अच्छा हो कि उसके गलेमें चक्कीका पाट बाँधकर उसे गहरे समुद्रमें समाधि दे दी जाय।'"'इस विषयमें ईसासे गांधीजीकी अपेक्षा हमें अधिक सहायता मिलती है।" मैं नहीं समझता कि हज़रत ईसाके वचन उनके सात्विक रोषके सिवा और कोई भाव प्रकट करते हैं, और जो बात करनेकी सलाह उन्होंने दी है वह अपराधीको दण्ड देनेके लिए दूसरेके उससे जबर्दस्ती करानेकी नहीं है, बल्कि अपराधीके खुद प्रायश्चित्तरूपमें करनेकी है। और क्या कुमारी राथबोनको इसका निश्चय है कि जिसे वह ईसाका उपाय कहती हैं उसका अवलम्बन करके वह बच्चे की जान बचा लेंगी ? उनका यह खयाल गलत है कि गांधीजीने इस सवालको नहीं उठाया है। उन्होंनें यह प्रश्न किया और स्पष्ट शब्दोंमें उसका उत्तर दिया है, जैसा कि १३०० साल पहले उन अमर मुसलिम शहीदोंने यह सवाल उठाया और अपने आचरणसे उसका जवाब दिया था जिन्होंने स्त्रियों और बच्चोंका भूख-प्याससे तड़प-तड़पकर मर जाना गवारा किया, पर जालिमकी मरजीके सामने सिर झुकाना और अपनी अंतरात्माके आदेशकी उपेक्षा करना पसन्द न किया। कारण यह है कि जोखिमके सामने सिर झुकाकर और अपनी अन्तर्ध्वनिकी उपेक्षा करके आप ज़ालिम को और ज्यादा ज़ुल्म करनेका बढ़ावा देते हैं।

पर कुमारी राथबोन भी 'हिन्द-स्वराज्य' को "अति शक्तिशालिनी" पुस्तक बताती हैं और कहती हैं कि "उसकी जबर्दस्त सचाई मुझे मजबूर कर रही है कि

मेरी अपनी सचाई कितनी है इसकी खोज करूँ। मैं लोगोंसे इस पुस्तकको पढ़ने-का अनुरोध करती हूं।"

'आर्यनपाथ' के सम्पादकोंने यह 'हिन्द-स्वराज्य-अंक' निकालकर शांति और अहिंसाके पक्षकी निश्चित रूपसे सेवा की है।